खंड

2

हिंदी उपन्यास एवं कहानी

इकाई 3

जैनेन्द्र कुमार और उनका उपन्यास साहित्य

इकाई 4

'त्याग–पत्र' की अंतर्वस्तु और विश्लेषण

इकाई 5

'नमक का दारोगा' का वाचन

इकाई 6

'नमक का दारोगा' की कथावस्तु और विश्लेषण

इकाई 7

'आकाशदीप' का वाचन

इकाई 8

'आकाशदीप' की अंतर्वस्तु और विश्लेषण

इकाई 9

'वापसी' (उषा प्रियम्वदा) : वाचन

इकाई 10

'वापसी' की कथावस्तु और मूल्यांकन

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खंड 2 परिचय

पाठ्यक्रम के इस खंड में कुल 8 इकाइयाँ हैं जो हिंदी उपन्यास एवं हिंदी कहानी के वाचन और विश्लेषण से संबद्ध हैं। इस खंड की इकाई 3 एवं 4 हिंदी के विशिष्ट उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास साहित्य तथा उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' के विश्लेषण पर आधारित है। इकाई 3 में जैनेन्द्र कुमार का परिचय तथा उनके संपूर्ण उपन्यास साहित्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के माध्यम से आप उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों के विषयों को जान–समझ सकेंगे। इस पाठ्यक्रम में आप जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 'त्यागपत्र' का अध्ययन कर रहे हैं। इकाई 4 में 'त्यागपत्र' की कथावस्तु, चरित्रों की विशेषताएँ तथा उसके संरचना शिल्प आदि का अध्ययन करेंगे।

इकाई 5 एवं 6 प्रेमचंद की कहानी 'नमक का दारोगा' पर आधारित है। इकाई 5 में प्रेमचंद का परिचय प्राप्त करने के साथ–साथ आप 'नमक का दारोगा' कहानी का वाचन करेंगे और इकाई 6 में इस कहानी के विश्लेषण का अध्ययन करेंगे। खंड की इकाई 7 एवं 8 जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' पर आधारित है। इकाई 7 में आप जयशंकर प्रसाद की विशिष्ट कहानी 'आकाशदीप' का वाचन करेंगे तथा उसके 'कथासार' को जानेंगे। इकाई 8 में 'आकाशदीप' की कथावस्तु, चरित्रों की चारित्रिक विशेषताओं तथा कहानी के संरचना शिल्प से अवगत कराया गया है। इकाई 9 एवं 10 उषा प्रियम्वदा की कहानी 'वापसी' से संबद्ध है। इकाई 9 में कहानी का वाचन कराया गया है और कथासार दिया गया है। इकाई 10 में कहानी को विश्लेषित किया गया है। इस क्रम में कहानी के चरित्रों की विशेषताओं से भी परिचित कराया गया है। इकाई 4, 5, 7 एवं 9 में अध्ययन कराए जा रहे पाठ से संबद्ध कुछ व्याख्यांशों की व्याख्या भी दी गई है।

आप खंड के उपन्यास और सभी कहानियों का ध्यानपूर्वक वाचन कीजिए और समझने की कोशिश कीजिए कि कहानीकार ने कहानी के माध्यम से क्या कहा है? कहानियों में आए कठिन शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं ताकि भाषा के स्तर पर कहानी को समझने में किसी तरह की कठिनाई न आए। इसके बाद आप कहानियों के साथ दिए गए बोध प्रश्नों का उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाइयों के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए। इससे आपको कहानियों को समझने में मदद मिलेगी। कहानी के वाचन के बाद 'कहानी का सार' दिया गया है जिससे कि आप कहानी के मूल कथ्य को पहचान सकें। आप स्वयं कहानियों को पढ़कर उनका सार लिखिए ताकि आप कहानी के कथ्य को अपने शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता विकसित कर सकें। इकाइयों में उपन्यास और कहानियों के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या भी दी गई है ताकि आप स्वयं कहानी की व्याख्या कर सकें। प्रत्येक कहानी का कहानी के तत्वों के आधार पर विश्लेषण और मूल्यांकन किया गया है। उन्हें पढ़ने से आपको कहानियों की विशेषताओं को समझने में सहायता मिलेगी। सत्रीय कार्य और सत्रांत परीक्षा में इन इकाइयों में दी गई सामग्री पर ही प्रश्न पूछे जाएँगे। पाठ्यक्रम में 'परिशिष्ट' के अंतर्गत कहानियों से संबद्ध कुछ विशिष्ट व्याख्यांश दिए गए हैं। उन्हीं में से परीक्षा में व्याख्या संबंधी प्रश्न पूछे जाएँगे। सही तरह से व्याख्या करने के लिए कहानी का गहन अध्ययन करना अपेक्षित है।

इकाई 3 जैनेन्द्र और उनका उपन्यास साहित्य

इकाई की रुपरेखाः

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 जैनेन्द्र कुमार का संक्षिप्त जीवन परिचय

3.3 जैनेन्द्र के साहित्य का परिचय

3.4 जैनेन्द्र के उपन्यासों की विशेषताएँ

3.4.1 प्रेमचंद और जैनेन्द्र

3.4.2 विषयवस्तु

3.5 जैनेन्द्र के उपन्यास

3.6 सारांश

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0. उद्देश्य

यह इकाई विशिष्ट उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार तथा उनके उपन्यासों पर आधारित है। इस इकाई में जैनेन्द्र के जीवन और उनके उनके उपन्यास साहित्य का परिचय दिया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जैनेन्द्र के संक्षिप्त जीवन परिचय से अवगत हो सकेंगे;
- जैनेन्द्र के साहित्यिक लेखन से परिचित हो सकेंगे;
- जैनेन्द्र के उपन्यास साहित्य की जानकारी दे सकेंगे; और
- जैनेन्द्र के उपन्यासों की कथावस्तु और उसमें निहित विषयों की विशेषताओं को जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

जैनेन्द्र कुमार हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित उपन्यासकार, कहानीकार और निबंधकार हैं। एक लेखक के रूप में जैनेन्द्र कुमार ने गद्य की रचना ही की है, कविताओं की रचना नहीं की अतः इस दृष्टि से वे प्रेमचंद के करीब है, जिन्होंने सिर्फ गद्य लेखन ही किया है। उपन्यासकार के रूप में उनका नाम अज्ञेय के साथ लिया जा सकता है। यद्यपि अज्ञेय ने कविता और गद्य दोनों में ही लेखन किया है। जैनेन्द्र कुमार व्यक्तिगत रूप से प्रेमचंद के करीब थे लेकिन लेखक के रूप में उन्होंने प्रेमचंद की परंपरा का अनुसरण नहीं किया। प्रेमचंद से भिन्न प्रकृति के साहित्य की रचना उन्होंने की। हिंदी संसार उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में जानता है। उनकी दृष्टि समाज पर नहीं बल्कि व्यक्ति पर केंद्रित रहती है। सुनीता, त्यागपत्र, सुखदा आदि लगभग बारह उपन्यासों और कई कहानियों की रचना उन्होंने की। अपनी दार्शनिक और साहित्यिक मान्यताओं को उन्होंने अपने निबंधों में अभिव्यक्त किया। चितन के स्तर पर वे मनोविज्ञान के अतिरिक्त जैन धर्म और गाँधीवाद से प्रेरित थे। स्वाधीनता

आंदोलन में उन्होंने सक्रिय भागीदारी की और जेल भी गए। उनके साहित्य को उनके जीवन के संदर्भ में भी देखा समझा है।

3.2 जैनेन्द्र कुमार का संक्षिप्त जीवन परिचय

जैनेन्द्र कुमार का जन्म जिला अलीगढ़, उत्तर प्रदेश के एक गाँव कौड़िया गंज में 2 जनवरी 1905 में हुआ और मृत्यु 24 दिसंबर 1988 में हुई। इनका बचपन का नाम आनंदीलाल था। साहित्य–रचना उन्होंने जैनेन्द्र कुमार के नाम से की। हिंदी संसार अब उन्हें जैनेन्द्र कुमार के नाम से ही जानता है। जब उनकी उम्र दो वर्ष की थी तब उनके पिता की मृत्यु हो गई। उनका लालन–पालन उनकी माँ रमा देवी और मामा भगवान दीन ने किया। उनकी आरंभिक पढ़ाई अतरौली और अपने मामा के गुरुकुल में हुई। मैट्रिक की परीक्षा उन्होंने पंजाब से पास की और आगे के अध्ययन के लिए बनारस आ गए। 1920 में जब महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया तब उनकी उम्र 15–16 वर्ष की थी। सन 1921 में असहयोग आंदोलन के प्रभाव से जैनेन्द्र ने अपनी पढ़ाई छोड़ दी। उन्होंने कुछ वर्षों तक कांग्रेस का काम किया और स्वाधीनता आंदोलन के दौर में जेल भी गए। उनका आरंभिक जीवन काफी आर्थिक कष्ट में बीता।

उनकी पहली कहानी सन् 1928 में "विशाल भारत" में प्रकाशित हुई। उसका पारिश्रमिक 4 रुपया प्राप्त हुआ। इस पारिश्रमिक से उनका आत्मविश्वास बढ़ा और वे धीरे-धीरे साहित्य लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। सन् 1929 में उनका पहला उपन्यास 'परख' प्रकाशित हुआ। साहित्य संसार ने नए लेखक का स्वागत किया। बाद में उन्होंने 12 उपन्यास और अनेक कहानियाँ लिखी, जो अब 7 खंडो में प्रकाशित हैं। नाटक, विचार साहित्य, ललित निबंध, यात्रा साहित्य, बाल साहित्य आदि अनेक गद्यविधाओं में उन्होंने रचनाएँ कीं। उन्होंने आलोचनात्मक रचनाएँ भी लिखीं। अपने वरिष्ट रचनाकार प्रेमचंद पर भी उन्होंने लेखन किया। उनके 'प्रेमचंद का गोदान यदि मैं लिखता' शीर्षक निबंध को बहुत सराहा गया। इस निबंध से उनकी और प्रेमचंद की रचनात्मक दृष्टि की भिन्नता का निदर्शन होता है। उनके साहित्य पर उन्हें साहित्य अकादमी सहित अनेक संस्थाओं के पुरस्कार प्राप्त हुए। इन पुरस्कारों से साहित्य की दुनिया में उनकी साहित्यिक स्वीकृति का अंदाजा लगाया जा सकता है।

हालाँकि जैनेन्द्र कुमार ने विश्वविद्यालय की शिक्षा ग्रहण नहीं की, तब भी उनकी साहित्य सेवा को दृष्टि में रखते हुए और उनके साहित्यिक महत्व को देखते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय ने सन् 1973 में और आगरा विश्वविद्यालय ने डी.लिट् की मानद उपाधि प्रदान की। हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग ने सन् 1973 में साहित्य वाचस्पति और गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय ने विद्या वाचस्पति की उपाधि प्रदान की।

लेखक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए साहित्य अकादमी की प्राथमिक सदस्यता तथा प्रथम राष्ट्रीय यूनेस्को सदस्यता भी प्रदान की गई। उन्होंने भारतीय लेखक परिषद् की अध्यक्षता करने के साथ दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मलेन का सभापतित्व भी किया। भारत सरकार ने जैनेन्द्र को सन् 1971 में पद्म भूषण से सम्मानित किया। लेखक के रूप में जैनेन्द्र की स्वीकृति प्रारम्भ से ही हो गई थी। उनके प्रथम उपन्यास 'परख' के लिए हिंदुस्तानी अकादेमी ने पुरस्कृत किया। फिर 1952 में 'प्रेम में भगवान' अनुवाद के लिए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने इन्हें पुरस्कृत किया। सन् 1961 में इन्हें 'मुक्ति बोध' उपन्यास पर प्रतिष्ठित साहित्य

अकादेमी पुरस्कार प्रदान किया गया। उत्तर प्रदेश सरकार का शिखर सम्मान "भारत भारती" से इन्हें सुशोभित किया गया। इसके अलावा जैनेन्द्र को 1970 में 'समय और हम' पर सम्मानित किया गया। 1974 में इन्हे साहित्य अकादेमी फ़ेलोशिप प्रदान की गई। इन पुरस्कारों और सम्मानों से जैनेन्द्र कुमार के लेखन के महत्व और उनकी लेखन प्रतिबद्धता को जाना जा सकता है।

3.3 जैनेन्द्र के साहित्य का परिचय

जैनेन्द्र कुमार मूलतः कथाकार हैं। जैसाकि हमने पहले भी उल्लेख किया कि इन्होंने बारह उपन्यासों और कई कहानियों की रचना की है। उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं–फ़ाँसी (1929), वातायन (1930), नीलम देश की राज कन्या (1933), एक रात (1934), दो चिड़िया (1935), पाजेब (1942), जयसंधि (1949)। उनकी संपूर्ण कहानियाँ साथ भागों में संग्रहीत की गई हैं। प्रेमचंद के रचना काल के दौरान ही जैनेन्द्र ने भी कहानियाँ लिखनीं प्रारम्भ कर दी थीं। उनकी कहानियों का विषय और उनमें चित्रित पात्र प्रेमचंद से भिन्न हैं। उन्होंने कहानियों में भी अपना ध्यान सामाजिक समस्याओं के स्थान पर व्यक्ति चरित्रों पर केन्द्रित किया। 'पत्नी' कहानी में पति राजनीतिक कार्यकर्ता है। देश–सुधार की बड़ी बड़ी बातें करता है। परन्तु जैनेन्द्र की दृष्टि उनकी घरेलू, निरक्षर पत्नी पर टिकी रहती है कि इस स्वाधीनता आंदोलन के मह्त्वपूर्ण सामाजिक–राजनितिक आंदोलन के बारें में पत्नी क्या सोचती है? उसी केंद्र से वे अपने पात्रों का जीवन चुनते हैं। प्रेमचंद ने पति के जीवन को चुना, तो जैनेन्द्र को पत्नी का जीवन अधिक साहित्यिक लगा।

कथा साहित्य के अलावा जैनेन्द्र प्रारम्भ से ही निबंध लेखन की ओर भी प्रवृत्त रहे हैं। इसमें उन्होंने अपने चिंतन, साहित्यिक–सामाजिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति की है। 'प्रस्तुत प्रश्न' (1936) में उनका निबंध संग्रह प्रकाशित हुआ। 'साहित्य का श्रेय और प्रेम', 'काम, प्रेम और परिवार' उनकी चर्चित निबंध संग्रह हैं। इसके इलावा उन्होंने संस्मरण साहित्य भी लिखा है। 'मेरे भटकाव' उनकी महत्वपूर्ण संस्मरणात्मक पुस्तक है। उन्होंने गाँधी जी की जीवनी के साथ दो आलोचनात्मक ग्रंथ भी लिखे हैं। साथ ही साथ उन्होंने कई रचनाओं का अनुवाद भी किया है।

3.4 जैनेन्द्र के उपन्यासों की विशेषताएँ

इस पाठ्यक्रम में आप जैनेन्द्र के महत्वपूर्ण उपन्यास 'त्यागपत्र' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में हम उनके उपन्यास साहित्य पर ही अपनी चर्चा को केंद्रित रखेंगे। जैनेन्द्र का रचना संसार आज़ादी से पहले (1929 से) लेकर आज़ादी के बाद तक फैला हुआ है। परख, सुनीता, त्यागपत्र और कल्याणी उपन्यासों की रचना उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के दौर में की। उस समय हिंदी समाज में क्रांतिकारी आंदोलन की चर्चा भी जोरों पर थीं।

3.4.1 प्रेमचंद और जैनेन्द्र

जैनेन्द्र गाँधी जी के समर्थक थे, लेकिन उनके परख, सुनीता, त्यागपत्र या कल्याणी उपन्यासों में स्वाधीनता आंदोलन की छाया नहीं है। उस समय तक प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' कहा जाने लगा था। जैनेन्द्र उनके निकटस्थ लोगों में से थे। वे प्रेमचंद का बहुत आदर करते थे। इसके बावजूद जैनेन्द्र ने प्रेमचंद का रास्ता नहीं

अपनाया। प्रेमचंद के "गबन" और "गोदान" उपन्यास जैनेन्द्र के रचनारत समय में ही प्रकाशित हुए थे। हिंदी समाज के बहुसंख्यक पाठक प्रेमचंद के समर्थक थे, तब भी जैनेन्द्र ने अपने आप को उनके प्रभाव से बचाए रखा। एक लेखक के रूप में यह बहुत बड़ी बात थी। न केवल उस दौर में वरन् बाद में भी जैनेन्द्र ने राजनीतिक जीवन को अपने रचना के केंद्र में नहीं रखा। पृष्ठभूमि के रूप में भले ही क्रांन्तिकारी पल आए हों, जैसे "सुनीता" में हरि प्रसन्न क्रांन्तिकारी दल का सदस्य है परन्तु जैनेन्द्र उसके पक्ष–समर्थन के लिए कुछ नहीं लिखते। इसके विपरीत उसकी आलोचना भी करते हैं। ऐसे पात्र जैनेन्द्र की दृष्टि में एकांगी और कुंठित हैं। हालाँकि उस समय जैनेन्द्र ने गाँधी जी के आंदोलन में भाग लिया था। अपनी शिक्षा बीच में छोड़ दी थी और दो एक बार जेल भी गए थे लेकिन यह सारा जीवन उनकी रचनात्मकता का प्रेरक नहीं बना। इसलिए हिंदी उपन्यास के विकास पर चर्चा करते हुए आलोचक इस तथ्य को रेखांकित करते हैं और जैनेन्द्र के महत्व को स्थापित करते हैं कि जैनेन्द्र ने प्रेमचंद के प्रभाव से अपने आप को मुक्त रखा और हिंदी कथा साहित्य को नई दिशा दी। जैनेन्द्र कुमार के लेखन से हिंदी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा प्रारम्भ हुई।

प्रेमचंद अपने उपन्यास में समाज का चित्रण करते हैं। उनमे आए हुए व्यक्ति चरित्र उस समय का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रेमचंद के होरी, हीरा, मनोहर सिर्फ व्यक्ति नहीं है, वे किसान वर्ग के प्रतिनिधि हैं जबकि जैनेन्द्र कुमार के यहाँ व्यक्ति व्यक्ति ही बना रहता है। यहाँ भी समाज दिखाई तो देता है, लेकिन वह समाज उस व्यक्ति को समझने में पृष्ठभूमि का काम करता है। विधवा कट्‌टो हो या क्रन्तिकारी हरिप्रसन्न–सब व्यक्ति हैं। उनकी अपनी पहचान है। कट्‌टो 'कोई भी' विधवा नहीं है। इसी तरह हरिप्रसन 'कोई भी' क्रन्तिकारी नहीं है। प्रेमचंद के संश्लिष्ट चरित्र भी संश्लिष्ट समाज को प्रस्तुत करने के लिए लाए जाते हैं। चूँकि प्रेमचंद को अपने उपन्यासों में समाज के यथार्थ का चित्रण करना था, इसलिए उनकी कथा भूमि विस्तृत होती थी। कथानक घुमावदार तरीके से समाज का चित्र दिखाता चलता था। जैनेन्द्र को यह सब नहीं दिखाना था। इसलिए उनके उपन्यासों में कथानक बहुत छोटा होता है। यही कारण है कि आकार में जैनेन्द्र के उपन्यास छोटे होते हैं और उनमें पात्रों की संख्या भी सीमित होती है। जैनेन्द्र का काम चार–पाँच पात्रों से चल जाता है जबकि प्रेमचंद के उपन्यासों में पंद्रह–बीस से अधिक पात्र होते हैं। समाज के ढाँचे के साथ सामाजिक परिवर्तन का इतिहास भी उपन्यास में जगह घेर लेता है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में कहानी नाममात्र की होती है। यदि उसे संक्षेप में कहना हो तो आठ–दस पृष्ठों में उसका कथासार कहा जा सकता है। इसलिए उनके उपन्यासों में घटनाएँ बहुत कम होती हैं। जीवन में एक आध घटना घटती है तो लेखक उसकी संगति में उस पात्र का मनोविज्ञान बताने लग जाता है। उस घटना का विरोध या प्रतिकार या परिवर्तन नहीं होता। इसीलिए यहाँ आकस्मिकता, कौतूहलता आदि कुछ नहीं होता। यहाँ जो है वह सब पूर्व निर्धारित है। उपन्यास पढ़ते समय हमें किसी काल्पनिक कथा का आनंद नहीं आता, वरन् पाठक, लेखक द्वारा प्रस्तुत जीवन को सहज रूप में देखते हुए चलते हैं।

3.4.2 विषयवस्तु

जैनेन्द्र के उपन्यासों की कथा व्यक्ति में अधिक चलती है। बाहरी वातावरण से उसका संवाद कम होता है। आलोचकों का मानना है कि प्रेमचंद वर्णन करते हैं जबकि जैनेन्द्र चित्रण करते हैं। वर्णन के क्रम में बहुत सी बातें स्वतः आ जाती हैं। चित्रण में कुछ

अपने आप छूटता जाता है। जैनेन्द्र अपने उपन्यासों में कोई उपदेश नहीं देते। सामाजिक परिवर्तन और सुधार की कोई आकांक्षा उनमें नहीं होती। वे केवल अपनी बात कहते है। कथा में व्यंजना की अभिव्यक्ति से वे काम चला लेते हैं। लेखक के रूप में जैनेन्द्र प्रयास करते हैं कि वे कथा में कम से कम बोलें। उनके पात्र भी कम बोलते हैं, आत्मचिंतन अधिक करते हैं, बाह्य अभिव्यक्ति कम करते हैं इसीलिए जैनेन्द्र कुमार के पात्रों का संघर्ष आंतरिक होता है।

जैनेन्द्र के आरंभिक उपन्यास अधिक प्रभावशाली हैं क्योंकि उनमें अनुभव की ताज़गी है। उन्होंने प्रारम्भ में नई दृष्टि से चीजों को रखा बाद में वैचारिक विकास के अभाव में उनके लेखन में पुनरावृत्ति और शुष्क दार्शनिक वक्तव्य अनायास आने लगते है। राम दरश मिश्र ने इसे "अनुभवहीन दार्शनिकता" कहकर रेखांकित किया है। इसके विपरीत प्रेमचंद की रचनात्मकता का विकास होता है। नवीन दृष्टि से वे यथार्थ की नई ज़मीन की पड़ताल करने में सक्षम हो जाते हैं। जैनेन्द्र वैसा नहीं कर पाते। जैनेन्द्र का वर्णन डायरी या मुख्य पात्र के साक्ष्य से चलता है। हम देखते हैं कि पारम्परिक उपन्यासों में उपन्यासकार सर्वज्ञ के रूप में सामने आता है। ऐसे उपन्यासकार सभी पात्रों को, कथा को, घटनाओं को जानते हैं। इसलिए सब पर टिप्पणी कर सकते हैं। पात्र और कथा को वांछित दिशा में मोड़ सकते हैं। 'त्यागपत्र' उपन्यास में सारा वर्णन जज प्रमोद करता है। अतः वह सिर्फ उन्हीं घटनाओं का वर्णन कर सकता है, जिनका वह स्वयं साक्षी रहा है या उसने अनुभव किया है। जिस समय वह एक स्थान पर है, तब वह ऐसे किसी स्थान का वर्णन नहीं कर सकता जहाँ समानांतर रूप से दूसरी घटना घटित हो रही होती है। ऐसी शैली के उपन्यासों में प्रामाणिकता तो हो सकती है, गहराई तो हो सकती है, परन्तु विविधता नहीं हो सकती। वर्णनपरक लेखकों पर यह बंदिश नहीं होती। इसलिए विषय वस्तु की दृष्टि से जैनेन्द्र के उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहे जाते हैं। जैनेन्द्र अपने उपन्यासों में परंपरागत नैतिकता को अस्वीकार करते हैं। परंपरागत नैतिकता को अस्वीकार करने के कारण उनके पात्रों के जीवन में पीड़ा का संचार होता है। जैनेन्द्र के अधिकतर पात्र अपनी इस पीड़ा को अपनी नियति मान लेते हैं। वे पीड़ा का प्रतिकार नहीं करते। इस पीड़ा से बचने का भीं कोई उपाय भी नहीं करते। कुछ समय पश्चात् यह पीड़ा आत्म पीड़ा बन जाती है। वे मन ही मन इस पीड़ा से गौरवान्वित महसूस करते हैं। यह आत्म पीड़ा जैनेन्द्र के उपन्यासों का प्रमुख भाव है। उनके लगभग सभी उपन्यासों में इस पीड़ा के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। यह आत्मोत्सर्ग और आत्मनिर्वासन एक जीवन मूल्य बन जाता है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में कुछ इस तरह के भाव पात्रों में दिखाई देते हैं कि 'मुझे इस दुःख में ही रहना है', 'इस दुःख से मुक्त नहीं होना है', 'यही मेरी नियति है', 'यह मेरे लिए अच्छी है', 'समाज के लिए भी अच्छी हैं आदि–आदि। "त्यागपत्र" की मृणाल का जीवन यही संदेश देता है। तप या काया–कष्ट को मोक्ष का मार्ग मानने जैसी भावना दिखाई देती है।

इस पीड़ा से कुंठा का जन्म होता है। व्यक्तित्व में गाँठ पड़ जाती है। कुछ आलोचकों का विचार है कि जैनेन्द्र के पात्र भौतिक दृष्टि से असंगत हैं। ऐसा नहीं है कि उनमें यौन अभिरुचि नहीं है। वे नारियों के प्रति आकर्षित होते हैं। उन्हें आकृष्ट करने की कोशिश करते हैं, परन्तु जब नारी पूर्ण समर्पण के लिए आती है, तब वे भाग खड़े होते है। 'सुनीता' में हरिप्रसन्न यही करता है। 'सुखदा' और 'व्यतीत' में भी ऐसे प्रकरण हैं, इसलिए जैनेन्द्र के कुछ आलोचकों का मत है कि जैनेन्द्र का दर्शन, जीवन और

समाज में पलायन का दर्शन है। वे अपने नारी पात्रों को अनैतिकता की तरफ ढकेलते हैं और इसके लिए वे अध्यात्मिकता का सहारा ले लेते हैं। इसलिए रामविलास शर्मा ने उन्हें 'साड़ी–जम्पर उतारवाद का लेखक' कहा है।

पात्रों की इस मनोवैज्ञानिक कुंठा से मुक्ति नारी देती है। 'सुनीता' में हरिप्रसन्न की गाँठ सुनीता खोलती है। इसके बावजूद जैनेन्द्र में परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व है। वे आधुनिकता से आरम्भ करते हैं और परंपरा के सामने घुटने टेक देते हैं। उनके पात्र प्रेम करेंगे विधवा कट्टो भी प्रेम करेगी, लेकिन किसी से शारीरिक संबंध नहीं रखेगी। विवाह भी कर लेगी लेकिन वैवाहिक रिश्ता नहीं रखेगी। 'परख' उपन्यास से उनकी यह चिंता प्रारम्भ होती है और इसी अनिश्चय में जीवन समाप्त कर देती है। उनके उपन्यासों में प्रेम से संबद्ध यह भावना देखी जा सकता है कि विचार के रूप में प्रेम बहुत पवित्र है, स्वाभाविक है, अच्छा है, वरेण्य है, लेकिन शारीरिक संबंधों से यह दूषित हो सकता है। अतः प्रेम को इस दूषण से बचाना है। जैनेन्द्र के पात्र यही करते रहते हैं।

बोध प्रश्न–1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   क) जैनेन्द्र कुमार का जन्म .... गाँव में हुआ।

   ख) जैनेन्द्र की पहली कहानी सन् .... में प्रकाशित हुई।

   ग) जैनेन्द्र ने .... उपन्यासों की रचना की।

   घ) जैनेन्द्र की संपूर्ण कहानियाँ .... भागों में संग्रहीत की गई हैं।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

   क) जैनेन्द्र का संक्षिप्त जीवन परिचय लिखिए। (लगभग 8 पंक्तियों में)

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ख) जैनेन्द्र के उपन्यासों की प्रमुख विशेषताएँ बताइए। (लगभग 10 पंक्तियों में)

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

....

....

3.5 जैनेन्द्र के उपन्यास

जैनेन्द्र कुमार ने बारह उपन्यासों की रचना की है। इकाई के इस भाग में आप जैनेन्द्र के उपन्यासों की विषयवस्तु का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन से आप जान पाएँगे कि उनके उपन्यासों का मूल कथ्य क्या है तथा एक–दूसरे से वे किस प्रकार भिन्न है।

परख (1929)

'परख' जैनेन्द्र कुमार का पहला उपन्यास है जो सन् 1929 में प्रकाशित हुआ। इसमें चार प्रमुख पात्र हैं–सत्यधन, कट्टो, गरिमा, और बिहारी। कट्टो बाल विधवा है। पाँच वर्ष की अवस्था में ही वह विधवा हो जाती है। उस उम्र में उसको विधवा होने का अर्थ भी मालूम नहीं था। विधवा होने के बाद कट्टो न तो किसी और से विवाह कर सकती है और न ही किसी से प्रेम कर सकती है। समाज की दृष्टि में वह यह अधिकार खो चुकी है। कट्टो समाज की इस मान्यता का विरोध करती है। कट्टो के जीवन में दो युवक आते हैं–आदर्शवादी सत्यधन और व्यावहारिक बिहारी। यह दोनों मित्र हैं। दोनों कट्टो को पढ़ाना चाहते हैं। सत्यधन इस बालविधवा कट्टो को पढ़ाने लगता है। कट्टो, सत्यधन के आदर्शवाद से प्रभावित होती है और उससे प्रेम करने लगती है। सत्यधन भी कट्टो के प्रति आकर्षण महसूस करता है। बीच में एक पात्र गरिमा आती है जो बिहारी की बहन है। सत्यधन का विवाह गरिमा के साथ होने वाला है। यह जानकार कट्टो अपने विवाह के लिए खरीदी गई सिंदूर की डिबिया और दर्पण गरिमा को भेंट कर देती है और सत्यधन के जीवन से हट जाती है। अब गरिमा और सत्यधन का विवाह हो जाता है। आगे चलकर वह और भी त्याग की देवी बन जाती है जब अपनी ससुराल से मिली हुई सारी सम्पत्ति वह सत्यधन को दे देती है। हालाँकि सत्यधन जब कट्टो का दिल तोड़ता है तब कट्टो को एहसास होता है कि वह विधवा हो गयी है। इससे पूर्व उसे इस तथ्य का एहसास नहीं होता। हालाँकि उसका मन अब भी सत्यधन के लिए संवेदनशील है। अब कट्टो का विवाह बिहारी से हो जाता है। लेकिन यह सामाजिक विवाह नहीं होता आध्यात्मिक लोक का विवाह होता है। वह विवाह करने के पश्चात कहती है कि "आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ, वैधव्य सार्थक हुआ।" उपन्यास का यह अंत कट्टो के जीवन की पीड़ा की अभिव्यक्ति करता है, लेकिन इसमें लेखक कही भी विधवा विवाह का समर्थन नहीं करता। विधवा को विधवा ही रहने देता है। उपन्यास के इस निष्कर्ष के कारण यह जैनेन्द्र का साधारण उपन्यास ही माना गया। हालाँकि इसमें असीम संभावना थी।

सुनीता (1935 ई.)

'सुनीता' उपन्यास में तीन प्रमुख पात्र हैं–सुनीता, उसका पति श्रीकांत और श्रीकांत का अत्यंत आत्मीय मित्र हरिप्रसन्न। तीनों एक दूसरे को बहुत प्यार करते है। उपन्यास के केंद्र में सुनीता है जो इन दोनों पात्रों को जोड़ती है। सुनीता के पति को लगता है कि उसका मित्र हरिप्रसन्न अपने जीवन में प्रसन्न नहीं है। वह कुंठित और अव्यवस्थित है। इसी कुंठा के कारण वह क्रांतिकारी बना रहता है। वह दरअसल क्रांतिकारी नहीं है। तब श्रीकांत इस प्रयास में लगता है कि हरिप्रसन्न को कुंठा से मुक्त किया जाए। उसको लगता है कि वह अकेला यह काम नहीं कर सकता। इसलिए वह अपनी पत्नी

सुनीता के मदद लेना चाहता है। हरिप्रसन्न श्रीकांत के घर जब आता है तो अपने मित्र की पत्नी सुनीता के प्रति आकर्षित होता है। श्रीकांत अपनी पत्नी को कहता है कि वह हरिप्रसन्न को हर तरह से प्रसन्न रखने का प्रयास करे। यह संकेत सुनीता की समझ में आ जाता है। सुनीता के प्रति हरिप्रसन्न के मन का यह आकर्षण आसक्ति तक पहुँच जाता है। इस बीच में श्रीकांत योजना बनाकर कचहरी के काम का बहाना बनाकर कानपुर चला जाता है ताकि उसकी अनुपस्थिति में दोनों का संबंध प्रगाढ़ हो सके। इधर सुनीता चाहती है कि हरिप्रसन्न उसकी छोटी बहन के प्रति आकर्षित हो जाए, लेकिन हरिप्रसन्न उसमें रुचि नहीं लेता। अंत में हरिप्रसन्न आधी रात को सुनीता को जंगल में ले जाता है, जहाँ वह अपने क्रांतिकारी मित्रों से मिलने वाला है तथा सुनीता को उस दल में शामिल करवाना चाहता है। वह काम के वशीभूत होकर सुनीता को सम्पूर्णता में प्राप्त करने की इच्छा ज़ाहिर करता है। सुनीता तो इसके लिए तैयार ही थी। वह उसके सामने निर्वस्त्र हो जाती है। नारी के इस तेजस्वी रूप को देख कर हरिप्रसन्न भाग खड़ा होता है। सुनीता को घर पहुँचाकर वह चला जाता है। उसकी मानसिक गाँठ निकल चुकी है। सुनीता वापस घर आकर पूर्वतः अपनी गृहस्थी में रम जाती है। उसके मन में कोई अपराध बोध नहीं है क्योंकि उसने जो कुछ किया है वह अपने पति की इच्छा के अनुरूप किया है। अतः फिर पति–पत्नी का रिश्ता पुनः सामान्य हो जाता है। यहाँ लेखक यह भी स्पष्ट करता है कि जिन्हें हम क्रांतिकारी समझते हैं वे दरअसल "कुंठित, टुटा हुआ और कमजोर" चरित्र है। वह सहज नहीं है। इस तरह सुनीता में भी विद्रोह की मानसिकता के बीच सात्विक प्रेम का जीवन स्थापित हो जाता है।

त्याग–पत्र(1938)

'त्याग–पत्र' जैनेन्द्र का अत्यंत चर्चित और प्रशंसित उपन्यास है। इसका देश–विदेश की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इसकी प्रमुख पात्र मृणाल है। उपन्यास में मृणाल के दुःख–दर्द का वर्णन उसका भतीजा करता है। उसका नाम प्रमोद है। वह अपनी बुआ को बहुत चाहता है। मृणाल किशोरावस्था में अपनी सहेली के भाई से प्रेम कर बैठती है। इसकी जानकारी जब उसकी भाभी को होती है तो वह मृणाल की पिटाई करती है। फिर उसका भाई उसकी अधेड़ उम्र के व्यक्ति से शादी कर देते हैं। मृणाल को लगता है कि पति तो परमेश्वर है, इसलिए वह अपने पति को अपने प्रेम प्यार की सारी कथा बता देती है। पति को यह बात बर्दाश्त नहीं होती और वह उसे मार पीटकर घर से निकाल देता है। वह भटकती हुई कोयले वाले के पास जाती है। जहाँ उसे अपना शरीर सौंपना पड़ता है। अंत में वह बहुत दीन–हीन अवस्था में लगभग वेश्या का जीवन जीती है। अंत में उसका भतीजा आता है। वह अपनी बुआ को अपने साथ ले जाना चाहता है, परन्तु बुआ उसे मना कर देती है कहीं मृणाल के कारण प्रमोद को कोई परेशानी उठानी न पड़े। इस उपन्यास पर अगली इकाई में आप विस्तार से पढ़ेंगे। अतः इस इकाई में उसकी कथा का सार–संक्षेप जानकारी ही पर्याप्त होगी।

कल्याणी (1939)

यह भी आज़ादी से पूर्व का उपन्यास है। इसकी रचना 'गोदान' के प्रकाशन के बाद सन् 1939 में हुई। जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों की तरह यह भी मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसकी केंद्रीय पात्र कल्याणी है। कल्याणी के अलावा एक उपन्यास का कथावाचक है। इसके अतिरिक्त कल्याणी का पति डॉ. असरानी है। यह भी आत्मकथात्मक शैली

में लिखा गया है। कल्याणी शिक्षित नारी है। वह विदेश में जाकर वहाँ से शिक्षा प्राप्त करके और डॉक्टर बनकर लौटी है। विदेश में रहते हुए कल्याणी का एक व्यक्ति से प्रेम हो जाता है। कल्याणी के भारत लौट आने के बाद उसका वह प्रेम विवाह, में परिणत नहीं हो पाता। यहाँ आने पर उसका विवाह डॉ. असरानी से हो जाता है। असरानी लोभी प्रकृति का व्यक्ति है। कल्याणी उस व्यक्ति को पसंद नहीं करती। इस कारण पारिवारिक स्तर पर वह तनावपूर्ण जीवन जीती है। इस विवाह से उसकी नारी भावना कुंठित हो जाती है। उसके सपने बिखर जाते हैं और वह अस्थायी तनाव में अपना जीवन बिताती है। लोभी के अलावा डॉ. असरानी पारम्परिक भारतीय मानसिकता का पुरुष है, जो नहीं चाहता कि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष से किसी तरह का संवाद भी रखे। कल्याणी को लगता है कि विवाह में स्त्री पत्नी बन जाती है। अर्थात् उसका अस्तित्व पति पर निर्भर हो जाता है। वह अब स्त्री नहीं है। पत्नी है। विवाह से पूर्व तो वह कन्या है। भारतीय समाज में स्त्री का तो कोई अस्तित्व ही नहीं है। कल्याणी बहुत सरल स्त्री है। उसको लगता है कि शादी या डॉक्टर में से किसी एक को ही वह चुन सकती है या तो वह अपनी शादी को सँभाले या डॉक्टर का कर्तव्य निभाए। दोनों भूमिकाओं में रहना कल्याणी को मुश्किल लगता है। यदि कोई उसके लिए यह चुनाव कर दे कि दोनों में से उसे कौनसी भूमिका निभानी है तो जब वह आराम से उसे निभा सकती है। इस कशमकश में वह टूट जाती है। वह भूमिका को ठीक से सँभाल नहीं पाती। अंततः इसी पीड़ा में उसकी मृत्यु हो जाती है। इस करुण निष्कर्ष पर उपन्यास समाप्त हो जाता है।

सुखदा (1953)

'सुखदा' उपन्यास का प्रकाशन देश की आज़ादी के बाद सन् 1953 में हुआ। इस उपन्यास में भी जैनेन्द्र की पूर्व औपचारिक परम्पराओं का ही पालन किया गया है। इसमें भी प्रमुख पात्र नारी है—सुखदा। उसी के नाम से उपन्यास का शीर्षक रखा गया है। इस उपन्यास में भी नारी पीड़ा की प्रतिमूर्ति है। उसकी पीड़ा का कारण भले ही अलग हो। सुखदा सुख–सुविधाओं में पाली–बढ़ी युवती है। उसके मन में विलासी जीवन जीने की आकांक्षा थी। लेकिन उसका विवाह सामान्य निम्न मध्य वर्गीय परिवार में हो गया। इससे उसके सपने चकनाचूर हो गए। उसके पति का वेतन बहुत कम था और परिवार पर आर्थिक दायित्व अधिक था। वैसे भी सुखदा उससे विवाह नहीं करना चाहती थी। वह किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह करना चाहती थी। थोड़े दिनों तक आर्थिक कष्ट सहन करने के बाद वह अपने पति से उदास रहने लगी। इसी उदासी में वह क्रांतिकारी दल में शामिल हो गई।

अब वह क्रांतिकारी दल के नेता से प्रेम करने लगती है। पति को पता चलता है। यहाँ जैनेन्द्र की विचारधारा सामने आती है। पति इस बात का बुरा नहीं मानता। वह इसकी अनुमति दे देता है। इसी बीच में क्रांतिकारी दल के एक नेता हरीश की गिरफ्तारी पर सरकार इनाम घोषित करती है। हरीश चाहता है कि अपने ही दल का कोई व्यक्ति पुलिस को सूचना देकर सरकार से इनाम ले ले। हरीश पकड़ा जाता है और घोषित इनाम सुखदा के पति को मिलता है। यह सुखदा के लिए अत्यंत कष्टकर बात है। वह अपने पति को खूब खरी–खोटी सुनाती है। सुखदा का पति लज्जित होता है, परन्तु इसमें उसकी कोई गलती नहीं है। सुखदा भी मानती है कि "मेरे स्वामी रोष के पात्र नहीं हैं, करुणा के पात्र हैं।" फिर भी सुखदा अपना क्रोध उस पर उतारती है। इस पूरे घटनाक्रम में सुखदा बीमार हो जाती है। उसे उस समय का लाइलाज क्षय रोग हो जाता है। उसे अस्पताल में भर्ती करवा दिया जाता है। जीवन की लौ बुझने

वाली है। इसी दौर में वह आत्मकथात्मक शैली में इस उपन्यास को लिखती है। इस आत्मकथात्मक शैली में लिख पाने के कारण इसमें अनुभव की प्रामाणिकता दृष्टिगत होती है।

विवर्त (1953)

इस उपन्यास का प्रकाशन भी सन् 1953 में हुआ। यह जैनेन्द्र के पुराने उपन्यासों की तरह नारी की पीड़ा पर केंद्रित उपन्यास नहीं है। इसमें दो प्रमुख पात्र हैं—जितेन और भुवनमोहिनी। दोनों एक दूसरे से प्रेम करते है। दोनों शादी करना चाहते है। इसमें एक सामाजिक, आर्थिक दिक्कत है। जितेन गरीब है और भुवनमोहिनी अमीर है। दोनों का विवाह कैसे चलेगा, यह चिंता स्वाभाविक है। भुवनमोहिनी के पिता प्रतिष्ठित जज हैं। वे खुले विचारों के हैं। भुवनमोहिनी चाहे जिससे विवाह कर ले उन्हें आपत्ति नहीं। अपने संशय को दूर करने के लिए वह जितेन को कार में बिठाकर ले जाती है और शादी का प्रस्ताव रखती है। यहाँ फिर अमीर–गरीब की ग्रंथि आ जाती है और रिश्ता टूट जाता है। अब भुवनमोहिनी का विवाह एक सुखी संतुष्ट परिवार में हो जाता है। इधर जितेन के मन में गाँठ पड़ जाती है कि भुवनमोहिनी सुख से क्यों रह रही है। वह उससे बदला लेना चाहता है। इधर भुवनमोहिनी अंत तक जितेन पर विश्वास करती है और जैनेन्द्र कुमार की अन्य नायिकाओं की तरह उसे सब सुख, सुविधाएँ देती रहती है।

जितेन क्रांतिकारी बन जाता है और एक ट्रेन को उड़ा देता है जिसमें कई व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। इसके बाद वह भागकर भुवनमोहिनी के घर में छिप जाता है। भुवनमोहिनी उसका सहज–स्नेह से स्वागत–सत्कार करती है। परन्तु बदले की भावना से पीड़ित जितेन उसके घर से गहने चुराकर भाग जाता है। जैनेन्द्र कुमार के अन्य उपन्यासों की तुलना में इसमें घटनाएँ अधिक घटती हैं। इधर जितेन का एक व्यक्ति भुवनमोहिनी के पास आता है और पत्र देता है कि यदि वह पचास हज़ार रूपये दे तो उसके गहने उसे वापिस मिल सकते है। भुवनमोहिनी मना कर देती है। फिर वह नाटकीय ढंग से उससे मिलता है, उसे बंधक बना लेता है, बहुत यातनाएँ देता है। इन सबसे त्रस्त भुवनमोहिनी कहती है कि वह उसे मार क्यों नहीं देता। इतना होने पर भी वह जितेन से स्नेह करती रहती है। इससे जितेन की गाँठ खुलने लगती है और वह सामान्य होने लगता है। उपन्यास के अंत में जितेन भुवनमोहिनी के गहने वापिस उसे देकर उसके घर भेज देता है। यह मनोवैज्ञानिक उपचार की एक विधि बताने जैसा प्रतीत होती है।

व्यतीत (1953)

'व्यतीत' का प्रकाशन भी सन् 1953 में ही हुआ। इस उपन्यास की कथा जयंत के इर्द–गिर्द घूमती है। जैनेन्द्र कुमार के अन्य उपन्यासों के पुरुष पात्रों की तरह ही जयंत भी कुंठाग्रस्त है। वह अपनी दूर की चचेरी बहिन अनीता से प्रेम करता है। अब सामाजिक मर्यादा के अनुसार उसका विवाह अनीता ही नहीं सकता। जैनेन्द्र कुमार अपने उपन्यासों में इस सामाजिक मर्यादा की रक्षा करते है, भले ही उनके पात्र इस मर्यादा के विरुद्ध या उससे कुछ अलग सोचते रहते हैं। अनीता का विवाह हो जाता है और वह अपने वैवाहिक जीवन से खुश है। अनीता का पति अनीता को प्रसन्न रखने का पूरा प्रयास करता है। जयंत अपने अकेलेपन से दुखी है। अनीता भी उससे अपने संबंध बनाए रखती है। जयंत का जीवन गरीबी में बीत रहा है। वह गंदी बस्ती

में रहता है। वह एक बार में नौकरी करता है। अनीता अपने पति के लिए ठीक–ठाक नौकरी तलाश करने के लिए कहती है, परन्तु जयंत इस सब से उदासीन रहता है।

अनीता उसका विवाह करवाना चाहती है। उसके लिए किसी संपन्न और सुन्दर लड़की को तलाशती है। इधर जयंत कविताएँ लिखता है। उसके जीवन में कई लड़कियाँ आती हैं और अंत में वह चन्द्रकला से विवाह कर लेता है। परन्तु वह उसके साथ खुश नहीं रह पाता, क्योंकि उसके मन में तो अनीता बसी हुई है। जयंत का व्यवहार असामान्य होता जाता है। कुछ लोग उसे पागल भी कहते है। उसके उदासीन और हठी स्वभाव को देख कर उसकी पत्नी उसे छोड़ कर चली जाती है। जयंत अकेला है। वह युद्ध में भाग लेने जाता है और घायल होकर लौटता है। थोड़ा ठीक होने के बाद अनीता उसके पास जाती है और उसे समझाने का प्रयास करती है। वह उसे झटक देता है। तब अनीता को भी क्रोध आता है। ऐसा पहली बार होता है। फिर भी अनीता के मन में जयंत के लिए प्रेम बचा रहता है, जैसा जैनेन्द्र की सभी नायिकाओं में होता है। वह जयंत की यौन इच्छाओं को पूर्ण करने में सहायक होती है। परन्तु इससे जयंत के भावनात्मक जगत और व्यवहारिक जगत में कोई सामंजस्य नहीं बैठता। अंततः इस उपन्यास में जीवन की व्यर्थता का बोध होता है। उपन्यास की यह परिणति जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों के समान ही है।

जयवर्द्धन (1965)

यह उपन्यास सन् 1965 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास को जैनेन्द्र कुमार ने डायरी शैली में लिखा है। उपन्यास के प्रमुख पात्र जयवर्धन हैं, जो राष्ट्राधिपति हैं। जयवर्धन इला के साथ एक ही महल में रहते हैं। दोनों में महान प्रेम है लेकिन उनके प्रेम में शारीरिकता का लेश मात्रा भी नहीं है। यह प्रेम दिव्य और उदात्त किस्म का है। जैनेन्द्र कुमार इस प्रकार के प्रेम–संबंधों का समर्थन अन्य उपन्यासों में भी करते आए हैं। जयवर्द्धन एक न्यायप्रिय राजा हैं। वे विधि संगत रूप में प्रजा का पालन करते है। उनके आचार–विचार एक दम पावन है। उपन्यास में आचार्य स्वामी चिदानंद आते है। वे जयवर्द्धन और इला के विवाह की तिथि निश्चित करते हैं। सब लोग इसी प्रतीक्षा में थे। सब विवाह होने की कामना करते है। उनके विवाह के निमंत्रण पत्र बँट गए हैं। सभी नाते–रिश्तेदारों को बुलावा जा चुका है। आचार्य और आश्रमवासियों की उपस्थिति में दोनों का विवाह संपन्न हो जाता है। सब कुछ विधिवत रूप में होता है। कुल दस मिनट में सारी कार्रवाई हो जाती है।

इसके बाद उपन्यास में नाटकीय मोड़ आता है। सवेरे सब उठते हैं तो पता चलता है कि जयवर्द्धन यहाँ है ही नहीं। ऐसा नाटकीय मोड़ देख कर सब चकित हो जाते हैं। उपन्यास का पाठक भी आश्चर्यचकित होता है कि ऐसा क्यों हुआ। यहाँ आकर पता चलता है कि उपन्यास के नायक जयवर्धन का विवाहसंस्था में विश्वास ही नहीं है। यहाँ फिर जैनेन्द्र की प्रेम और विवाह के द्वैत की समस्या उपस्थित हो जाती है। इसके बाद उपन्यास में विचार, दर्शन,सामाजिक आदर्श, राजनीतिक घात–प्रतिघात सब आ जाते हैं और उपन्यास के इस वैयक्तिक प्रेम सम्बन्ध को बोझिल व उबाऊ बना देते हैं। बाहर की जो समस्याएँ हैं वे हैं ही, मूल समस्या इला तथा जय का कुंठाग्रस्त व्यक्तित्व है। इस व्यक्तित्व के कारण जयवर्द्धन राज्य की समस्याओं को भी सँभाल नहीं पाता। यह मनुष्य की मानवीय निजता और शासन की सामाजिकता का द्वंद्व है। इस कारण उनका विवाह नितांत निजी नहीं रह पाता। वह भी सामाजिक–राजनीतिक प्रश्न बन जाता है।

मुक्तिबोध (1965)

यह उपन्यास सन् 1965 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास पर जैनेन्द्र कुमार को 'साहित्य अकादेमी' पुरस्कार प्रदान किया गया। इसके प्रमुख पात्र सहाय, उसकी पत्नी राजश्री और सहाय की प्रेमिका नीलिमा है। राजश्री खुले विचारों की स्त्री है। वह सहाय की प्रेमिका से चिढ़ती नहीं। वरन् उससे खुश रहती है। उपन्यास के नायक सहाय को मंत्री पद दिया जा रहा है जिसे वे स्वीकार करना नहीं चाहते। सहाय के इस निर्णय से उसके सभी स्वजन और परिजन नाराज हो जाते हैं क्योंकि मंत्री बन जाने से सबके स्वार्थ पूर्ण हो सकेंगे। उसका जामाता उद्योगपति है। उसकी कई मिलें हैं। एक नई मिल स्थापित भी होने वाली है। उसके खिलाफ जाँच चल रही है। मंत्री बनने पर जामाता को सारी सरकारी सुविधाएँ मिल जाएँगी। सहाय जानते हैं और इसी कलंक से बचने के लिए वे पद के लिए इंकार करते हैं। वे किसी की बात नहीं सुनते। यहाँ तक कि पत्नी राजश्री और प्रेमिका नीलिमा का अनुरोध भी वे नहीं मानते।

अब जैनेन्द्र के पात्र में गाँठ पड़ जाती है, जो उसे मंत्री का पद लेने से रोकती है। नीलिमा इस गाँठ को खोलना चाहती है। सहाय मानता है कि राजनीति हमेशा से अनीति पर चलती आई है। उस अनीति को देख कर वह उसमें भाग लेना नहीं चाहता। राजश्री, नीलिमा और अन्य पारिवारिक जन इसे सहाय की खोखली आदर्शवादिता मानते हैं। फिर भी वह सहमत नहीं होता। उपन्यास में आगे चलकर उसकी बेटी अंजलि की दशा खराब होने लगती है। इतने सारे पारिवारिक एवं भावात्मक दबाव के आगे अंततः सहाय झुक जाता है और न चाहते हुए भी मंत्री पद स्वीकार कर लेता है। अब शेष परिवार वाले प्रसन्न हैं, परन्तु इसका नायक सहाय ही प्रसन्न नहीं है। वह आत्म पीड़ा की स्थिति में आ जाता है। यही जीवन की गति है। बहुधा हम ऐसे काम करते जाते हैं, जो हम करना नहीं चाहते। उपन्यास का अंत इस घोषणा से होता है कि "मैं मिनिस्टर हो गया हूँ।" अब इसे सुखात्मक अंत कहें या दुखात्मक ? यह अनिर्णय की स्थिति में ही रहता है।

अनन्तर (1968)

यह उपन्यास सन् 1968 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार में प्रेम और परिवार के द्वंद्व और तनाव की कहानी कही गई है। उपन्यास में आदित्य उसकी पत्नी चारु और प्रेमिका अपराजिता है। अपराजिता उसकी पत्नी को कहती है कि वह आदित्य से प्रेम करती रही है। वह उसके साथ रही है तथा उसकी शारीरिक जरूरतों को भी पूरा किया है। परन्तु पत्नी उसकी चारु ही है और वही रहेगी।

इस परिवार के मुखिया प्रसाद उसकी पत्नी रामेश्वरी और जामाता आदित्य के जीवन पर उपन्यास की कहानी केंद्रित है। आदित्य संपन्न है और उसकी कई फ़ैक्टरियाँ हैं। वह हमेशा व्यस्त रहता है। उसकी प्रेमिका को लेकर पत्नी बेचैन रहती है और यह बेचैनी पूरे परिवार में छाई रहती है। इस बेचैनी को उसकी प्रेमिका ही दूर करती है। अपराजिता ऐसी पात्र है जो सभी का हित चाहती है। उसे दुनिया का अनुभव है। वह जानती है कि विरोध से प्रेम नहीं मिलता। प्रेम से ही प्रेम को पाया जा सकता है। अतः वह न तो आदित्य के मन में किसी तरह की ग्रंथि को आने देती है और न ही चारु के मन की पीड़ा को स्थायी रूप से रहने देती है। वह जब घर आती है तो रामेश्वरी के पैर छू कर उससे माफ़ी माँगती है और चारु को सब कुछ साफ़ साफ़ बता देती है। इससे चारु की आँख खुल जाती है। अपरा की स्पष्टवादिता से चारु और अपरा में मित्रता हो जाती है। इसे देख कर रामेश्वरी, प्रसाद और आदित्य सभी

आश्चर्यचकित रह जाते है। इस तरह इस उपन्यास का सुखद अंत होता है। इस उपन्यास में जैनेन्द्र कुमार की इस अवधारणा की अभिव्यक्ति है कि प्रेम होने से या करने से परिवार में विघटन नहीं होता, वरन परिवार में स्नेह की वृद्धि होती है। इसलिए परिवार से बाहर किसी प्रेमिका की उपस्थिति सामाजिक दोष नहीं है। इस विषय को जैनेन्द्र कुमार ने अपने कई उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। 'अनन्तर' उपन्यास में भावना प्रमुखता से रेखांकित हुई है।

अनामस्वामी (1974)

यह उपन्यास सन् 1974 में प्रकाशित हुआ। इसमें 'त्याग-पत्र' के आगे की कहानी कही गई है। इसके कुछ अंशों को जैनेन्द्र कुमार ने सन् 1942 में लिख लिया था। इसे उन्होंने सन् 1974 में पूरा करके प्रकाशित किया। समय के इतने अंतराल के बावजूद यह पता करना मुश्किल है कि इसका पुराना अंश कौन सा है और नया कौन सा है। इस उपन्यास में भी प्रेमी–प्रेमिका हैं जिनमें प्रेम है, परन्तु जिनका विवाह नहीं हो पाता। इस तरह एक कुंठा का जन्म होता है। प्रोफेसर शंकर उपाध्याय वसुंधरा से प्रेम करते हैं और उससे विवाह करने का स्वप्न देखते हैं। लेकिन वसुंधरा का विवाह उनसे न होकर कुमार से हो जाता है। वसुंधरा से शादी न हो पाने की पीड़ा घनीभूत होकर विनाशक रूप धारण कर लेती है। शादी न हो पाने के कारण जैसे वे कष्ट पा रहे है, वैसा ही कष्ट वसुंधरा को भी होना चाहिए, शंकर उपाध्याय इसी बारे में सोचते रहते हैं।

ऐसे में उन्हें मौका मिलता है। वसुंधरा संतान चाहती है लेकिन उसका पति इसमें सक्षम नहीं है। अतः पति कुमार वसुंधरा को सलाह देते है कि वह शंकर उपाध्याय से सहवास करके संतान प्राप्त कर ले। शंकर को यह प्रस्ताव पसंद तो आता है परन्तु वसुंधरा को पीड़ा पहुँचाने के लिए वह यह प्रस्ताव ठुकरा देता है। वह अपनी पूर्व प्रेमिका को तड़पता हुआ देखना चाहता है। वह इस पीड़ा से पीड़ित होता रहता है और क्रोध में आकर एक दिन अपनी पत्नी की हत्या कर देता है। फिर भी उसका क्रोध शांत नहीं होता। आगे वह वसुंधरा के पति को अपना निशाना बनाता है। अपनी ईर्ष्या और घृणा के आवेश में एक दिन सुई लगाकर वसुंधरा के पति को अपाहिज बना देता है। इससे वसुंधरा बहुत परेशान रहती है। वसुंधरा की परेशानी शंकर उपाध्याय को अच्छी लगती है। फिर भी उसे संतोष नहीं होता। एक दिन वह इंजेक्शन लगाकर वसुंधरा को भी मार देता है और फिर स्वयं भी अपने आप को समाप्त कर देता है। इस तरह अतृप्त प्रेम की यह कुंठा इस उपन्यास को दुखांत बना देती है, जहाँ दुखांत होने का कोई तर्क नहीं होता। शंकर यदि शुरूआत में ही सत्य को स्वीकार कर लेता, तो पात्रों का जीवन दुखांत नहीं होता। सब अपना–अपना जीवन जीते, परन्तु ऐसा इस उपन्यास में संभव नहीं हो पाता।

दशार्क (1985)

यह जैनेन्द्र कुमार का अंतिम उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1985 में हुआ। इसकी नायिका सरस्वती नामक युवती है। उसका विवाह हो जाता है, लेकिन अपने पति से उसके संबंध तनावपूर्ण हो जाते हैं। वह उसे छोड़ कर वेश्या बन जाती है। अब उसका नाम सरस्वती नहीं, वरन रंजना है। वह आम वेश्याओं की तरह अपने शरीर का सौदा नहीं करती अपितु वह एक संस्था बनाती है। इस संस्था के द्वारा वह पुरुषों के मन में ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिशोध की आग जलाती रहती है और उसे बुझाने के लिए ममता, स्नेह और प्यार देती है। जैनेन्द्र को लगता है कि अपने आत्मीय व्यवहार और सहज स्नेह से वह पुरुषों की पीड़ा का हरण कर सकती है। उन्हें मानवीय बनाने में

सहायक हो सकती है। इस तरह वह समाज के लिए सहायक बन सकती है। रंजना के संपर्क में कई तरह के पुरुष आते हैं। वह सबसे स्नेह करती है। कई बार गुंडे–बदमाश भी आते हैं। वह उनसे भी कोई कटु व्यवहार या झगड़ा नहीं करती अपितु प्रेम से उन्हें सँभालती है। रंजना वेश्याओं की सभा में भी उपदेश देने जाती है। उसका कहना है कि वे नफरत करना नहीं, प्यार करना सीखें। उनके मन में किसी तरह का अपराध बोध नहीं होना चाहिए। इसके माध्यम से जैनेन्द्र कुमार मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का उपदेश देते हैं। सरस्वती कहती है कि जो व्यक्ति उनके पास आता है, वह भटका हुआ व्यक्ति है। दुनिया से उसे कई कटु अनुभव मिले हैं। वह पीड़ित है। उसे सांत्वना की आवश्यकता है, जो उसे परिवार में नहीं मिल रहा है। हम उसके घाव पर मरहम लगा सकती हैं। अब यह कितना आदर्शवादी है और कितना व्यवहार जगत में संभव रहा है इस पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है परन्तु जैनेन्द्र अपनी दृष्टि से इस वर्ग की समस्याओं को देखते हैं। हालाँकि यह भी वेश्याओं के पुनरोद्धार की तरह का एक आदर्शवादी प्रयास है। यहाँ वे मनोचिकित्सक की तरह व्यवहार करती हैं और जन सेवा का अवसर खोज लेती हैं। उपन्यास में अंततः इस वर्ग की स्त्रियाँ अपने जीवन से संतुष्ट हैं और गर्व से रहती हैं।

बोध प्रश्न 2

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

   क) जैनेन्द्र का अंतिम उपन्यास कौन सा है ?

   ....

   ....

   ....

   ख) जैनेन्द्र कुमार किस उपन्यास पर 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार प्रदान किया गया?

   ....

   ....

   ग) जयवर्द्धन किस शैली में रचित है ?

   ....

   ....

   ....

   घ) डॉ. असरानी की दो चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ङ) मृणाल और प्रमोद किस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं ?

   ....

   ....

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति उचित शब्दों द्वारा कीजिए।

   क) 'परख' सन् .... में प्रकाशित हुआ।

   ख) 'अनाम स्वामी' में .... से आगे की कहानी कही गई है।

   ग) .... उपन्यास की कथा जयंत के इर्द–गिर्द घूमती है।

   घ) सहाय और राजश्री .... उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं।

3.6 सारांश

जैनेन्द्र कुमार हिंदी के महत्वपूर्ण कथाकार और निबंध लेखक हैं। उपन्यासकार के रूप में उनका नाम अज्ञेय के साथ किया जाता है। वे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार माने जाते हें। इस अर्थ में वे प्रेमचंद की परंपरा के लेखक नहीं है। उनका जन्म उत्तर प्रदेश में कौड़ियागंज गाँव में 2 जनवरी,1905 में और मृत्यु 24 दिसम्बर 1988 में हुई। इनका बचपन का नाम आनंदीलाल था। साहित्य की दुनिया में इनकी पहचान जैनेन्द्र कुमार के नाम से है। इनको विधिवत विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त नहीं हुई। असहयोग आंदोलन के प्रभाव से उन्होंने अपनी शिक्षा को बीच में ही छोड़ दिया। उनके साहित्यिक योगदान को ध्यान में रखते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय और आगरा विश्वविद्यालय आगरा ने डी.लिट की मानद उपाधि प्रदान की। इनको कई संस्थाओं से पुरस्कार प्राप्त हुए। जिनमें साहित्य अकादमी पुरस्कार शामिल है। भारत सरकार ने इन्हें पद्म भूषण की उपाधि प्रदान की।

उन्होंने बारह उपन्यासों और कई कहानियों की रचना की। उनकी संपूर्ण कहानियाँ सात भागों में संग्रहीत की गई हैं। इसके अलावा इनका वैचारिक गद्य भी महत्वपूर्ण है। जिनमें प्रस्तुत प्रश्न, साहित्य का श्रेय और प्रेम काम, प्रेम और परिवार प्रमुख है। उन्होंने प्रेमचंद के समय में ही उपन्यास लिखना प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1929 में उनका पहला उपन्यास 'परख' प्रकाशित हुआ। इसके अलावा सुनीता, त्यागपत्र, कहानी आदि उपन्यासों की रचना स्वधीनता आंदोलन के दौर में हो गई थी। आजादी के बाद सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्द्धन, मुक्तिबोध, अनन्तर, दशार्क आदि उपन्यासों की रचना की।

उनके उपन्यासों में व्यक्ति का जीवन महत्वपूर्ण है। समाज का नहीं अपितु व्यक्ति का चित्रण करना, उसके मनोभावों का चित्रण करना और उसके मनोविज्ञान का चित्रण करना अधिक पसंद करते हैं। उनके उपन्यासों पर गाँधीवाद और जैन धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनके उपन्यास आकार में छोटे होते हैं। प्रेमचंद के साथ प्रगाढ़ संबंध होते हुए भी जैनेन्द्र कुमार के लेखन पर प्रेमचंद का प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क) कौड़िया गंज, (ख) 1908, (ग) बारह, (घ) सात

2. क) उत्तर के लिए इकाई का भाग 3.2 देखिए।

   ख) उत्तर के लिए इकाई का भाग 3.4 देखिए।

3. क) दर्शाक (1986), (ख) मुक्तिबोध, (ग) डायरी शैली में, (घ) लोभी तथा पारम्परिक भारतीय मानसिकता का पुरुष, (ङ) त्याग-पत्र।

4. क) 1929, (ख) त्याग-पत्र, (ग) व्यतीत, (घ) मुक्तिबोध।

इकाई 4 'त्याग–पत्र' की अंतर्वस्तु और विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 'त्याग–पत्र' का परिचय एवं संदर्भ

4.3 'त्याग–पत्र' का कथासार

4.4 'त्याग–पत्र' के कथानक की विशेषताएँ

4.5 चरित्र चित्रण

- 4.5.1 मृणाल
- 4.5.2 प्रमोद
- 4.5.3 अन्य पात्र

4.6 परिवेश

4.7 संरचना शिल्प

- 4.7.1 संवाद योजना
- 4.7.2 भाषा
- 4.7.3 शैली

4.8 जीवन दृष्टि

4.9 संदर्भ सहित व्याख्या

4.10 सारांश

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपः

- 'त्याग–पत्र' उपन्यास का परिचय एवं संदर्भ जान सकेंगे ;
- 'त्याग–पत्र' की संक्षिप्त कथा जान सकेंगे और कथानक की विशेषताएँ समझ सकेंगे;
- 'त्याग–पत्र' के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण कर पाएँगे; और
- 'त्याग–पत्र' के उद्देश्य को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

जैनेंद्र कुमार हिंदी के प्रतिष्ठित कथाकार हैं। उन्होंने अनेक उपन्यासों की रचना की है। इनमें से 'त्याग–पत्र' उनका सर्वाधिक चर्चित और प्रशंसित सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास का कथा वाचक प्रमोद है। वह अपनी बुआ मृणाल की कहानी कहता है। मृणाल के माध्यम से हम नारी जीवन की दर्द भरी दास्तान को पढ़ समझ सकते हैं। इसके साथ ही हम जैनेंद्र कुमार के जीवन–दर्शन को भी पढ़–समझ सकते हैं।

4.2 'त्याग–पत्र' का परिचय एवं संदर्भ

यह हिंदी ग्रंथ रत्नाकर का 94वां ग्रंथ है। इसके शीर्षक में लिखा हुआ है–

'त्याग–पत्र'
(मौलिक सामाजिक उपन्यास)

पहली बार यह सन् 1937 में प्रकाशित हुआ है। उपन्यास का प्रारंभ इस वक्तव्य से होता है–

''सर एम. दयाल जो इस प्रान्त के चीफ जज थे और जजी त्यागकर इधर कई वर्षों से हरिद्वार मे विरक्त जीवन बिता रहे थे, उनके स्वर्गवास का समाचार दो महीने हुए पत्रों में छपा था। पीछे उनके कागजों में उनके हस्ताक्षर के साथ एक पांडुलिपि पाई गई जिसका संक्षिप्त सार इतस्ततः पत्रों में छप चुका है। उसे एक ''कहानी'' ही कहिए। मूल लेख अंग्रेजी में है। इसी का हिंदी उल्था यहाँ दिया जाता है।

कहानी में स्थानों और व्यक्तियों के नाम और कुछ ऐसे ही ऐहिक विवरण अनिवार्य न होने के कारण ''बदल या कम कर दिया गए हैं।''

इसके बाद उपन्यास प्रारंभ होता है। यहाँ सर एम. दयाल के स्थान पर प्रमोद पात्र बनकर आया है। इसी प्रमोद की बुआ मृणाल है। मृणाल के मरने की खबर से उपन्यास का प्रारम्भ होता है। फिर विस्तार से मृणाल के जीवन की कहानी चलती है। उपन्यास का अंत भी मृणाल के मरने से होता है। बुआ के मरने के बाद बुआ को संबोधित करते हुए प्रमोद कहता है – ''बुआ, तुम मर गई। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत का आरंभ–समारंभ ही छोड़ दूँगा। औरों के लिए रहना तो शायद नये सिरे से मुझ से सीखा न जाय। आदतें पक गई है। पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा जितना अनिवार्य होगा। यह वचन देता हूँ।

भगवन, तुम मेरी बात सुनते हो। वैसे चाहे न भी तो, पर वचन तोड़ूँ तो मुझे नरक अवश्य ही देना।

(ह.) एम. दयाल ता. 3–4

पुनश्च – इसी के साथ सही करता हूँ कि जजी से अपना त्याग–पत्र मैंने दाखिल कर दिया है।

एम.डी.ता. 4–4

इस तरह यह एम. दयाल उपन्यास के प्रारंभ में आते हैं और फिर अन्त में आते हैं। उपन्यास में 'त्याग–पत्र' का अर्थ हुआ जज एम. दयाल या प्रमोद द्वारा जज के पद से दिया गया त्यागपत्र। स्पष्ट है कि मृणाल के जीवन से त्यागपत्र का अर्थ इस उपन्यास में नहीं आता क्योंकि क्योंकि मृणाल की मृत्यु होती है, स्वेच्छा से। वह मृत्यु का वरण नहीं करती। वह ऐसे जीवन का वरण करती है जिसमें उसे अपार कष्ट होता है, परंतु वह जीवन से त्याग–पत्र की श्रेणी में नहीं आता। तब पाठक के मन में यह प्रश्न भी आता है कि यह उपन्यास प्रमोद का है या मृणाल का, उनन्यास में कौन महत्वपूर्ण है। वर्णन की दृष्टि से तो मृणाल महत्वपूर्ण है, परंतु उपन्यास के ढाँचे में प्रमोद भी एक प्रमुख पात्र है।

उपन्यास का यह परिवार समृद्ध परिवार है। प्रमोद के पिता दो भाई और तीन बहनें थीं। भाई छोटा था जो घर से अलग होकर बरमा चला गया। दो बड़ी बहनें थी। दोनों प्रसव के दौरान मर गईं। इनमें से एक बुआ बची, जो सबसे छोटी थी। पिता बुआ को बहुत प्यार करते थे और माँ उस पर कठोर नियंत्रण रखती थी। वे उसे 'आर्य गृहिणी' बनाकर रखना चाहती थीं। बुआ शहर के बड़े स्कूल में पढ़ती थी और बग्गी में बैठकर स्कूल जाती थी। इस पृष्ठ भूमि से 'त्याग–पत्र' प्रारंभ होता है।

उपन्यास में मुख्य पात्र मृणाल और उसका भतीजा प्रमोद है। भतीजा उम्र में बुआ से काफी छोटा है, दोनों का रिश्ता अत्यंत आत्मीय हैं। चूँकि कथा भतीजा कहता है, इसलिए इसमें वही बातें आती है जहाँ भतीजा उपस्थित रहता है या उसे बताया गया है। प्रमोद की अनुपस्थिति में घटित घटनाओं की सूचना दे दी जाती है ताकि कथा के ग्रहण में बाधा उत्पन्न न हो। उम्र में काफी छोटा होने के कारण भतीजे के सामने जो बातें आती है वे बिम्ब रूप में आती है। उनका अर्थ ग्रहण भतीजा नहीं कर पाता। पाठक अलबत्ता उनका अर्थ–ग्रहण कर लेता है। वर्णन करने के क्रम में प्रमोद बड़ा हो गया है। अतः तब वह उन सभी बातों को समझने लगा है जिनका अर्थ–ग्रहण वह पहले नहीं कर पाया था। बुआ के मरने के साथ ही प्रमोद के मन में यह कसक रहती है कि क्या अंत समय में बुआ ने मुझे याद किया? इस कसक से दोनों के आत्मीय रिश्ते का एहसास होता है। उपन्यास को पढ़ते समय या इसका अध्ययन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कथा वाचक (प्रमोद) और कथा विषय (मृणाल बुआ) का रिश्ता अत्यंत आत्मीय और सघन है।

4.3 'त्याग–पत्र' का कथा सार

उपन्यास का प्रारंभ मृणाल के स्कूल दिनों से होता है, जब वह अत्यन्त शरारती और चुल बुली लड़की हुआ करती थी और जिसकी शीला नामक सहेली थी। शीला और भी नटखट है। एक बार शीला गणित के शिक्षक की कुर्सी में कीलें डाल देती है। शिक्षक नाराज होते हैं और वे पूरी कक्षा को दण्ड देने के लिए तैयार होते हैं और पूछते है कि यह किसने किया। मृणाल को पता है कि यह कार्य शीला ने किया है। तब भी वह कक्षा में खड़ी होकर स्वीकार कर लेती है कि यह उसने किया है। इस पर उसकी डण्डे से पिटाई होती है, जिसे वह शान्ति से स्वीकार कर लेती है। मृणाल की आत्म पीड़ा की यह पहली तस्वीर है। शीला के घर मृणाल का आना–जाना होता है। यहाँ शीला के भाई से उसके संबंध हो जाते हैं। जब प्रमोद की माँ अर्थात् मृणाल की भाभी को इन संबंधों की जानकारी होती है, तब वह मृणाल को कमरे में बंद करके डंडे से खूब पिटाई करती है। एक बार तो मृणाल चिल्लाती है। बाद में इस मार को भी वह चुपचाप सहन कर लेती है।

इस घटना से आहत प्रमोद के माता–पिता जल्दी–जल्दी मृणाल का विवाह कर देते हैं। उसकी किशोरावस्था अभी चल ही रही है। न उसकी समझ विकसित हुई है और न ही भावनाएँ। चुपचाप वह इस स्थिति को स्वीकार कर लेती है। कुछ दिन बाद वह वापिस घर आती है। वह माँ बनने वाली है। ससुराल में वह खुश नहीं है। वह ससुराल जाना नहीं चाहती, क्योंकि उसका प्रौढ़ पति उसे बेंत से पीटता है। दुबारा ससुराल जाने पर कुछ दिन बाद पति उसे घर से निकाल देता है। उसकी नवजात बच्ची की मृत्यु हो जाती है।

इसके बाद वह एक कोयले वाले के घर में रहने लगती है। मृणाल उसके बच्चे की माँ बनने वाली है। प्रमोद उससे मिलने जाता है, तब वह अपनी स्थिति का बयान करती है और यह आशंका ज़ाहिर करती है कि अब थोड़े दिनों बाद यह आदमी भी मुझे छोड़कर वापिस अपने परिवार के पास जाने वाला है। कुछ समय पश्चात् मृणाल को मार–पीट कर निराधार छोड़कर वह कोयले वाला भी चला जाता है। अस्पताल में वह एक बच्ची को जन्म देती है। अस्पताल मिशन का है। अस्पताल वाले उसे यह प्रस्ताव देते हैं कि वह इस बच्ची को मिशन को सौंप दें। मिशन उसे पाल–पोस कर, पढ़ा–लिखाकर बड़ा कर देगा। वे मृणाल को भी ईसाई धर्म स्वीकार करने की सलाह देते हैं। उसे नर्स की नौकरी देने का प्रलोभन भी देते हैं। मृणाल उनके इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है और बिना किसी सहारे के वहाँ से चली जाती है।

इस बीच प्रमोद के विवाह की चर्चा चलती है। वह लड़की देखने के लिए जिस घर में जाता है, उस घर में नौकरानी के रूप मे उसे मृणाल मिलती है। मृणाल का जीवन अब ढर्रे पर आ गया है। हालाँकि उसकी बच्ची की फिर मृत्यु हो गई है। लड़की वालों को पता चलता है कि मृणाल प्रमोद की बुआ है, तो वे यह रिश्ता करने से मना कर देते हैं और मृणाल को भी नौकरी से निकाल देते हैं। अब वह कुत्सित समाज के बीच चली जाती है जहाँ उसका जीवन लगभग नारकीय जीवन बन जाता है। प्रमोद फिर प्रयास करता है कि मृणाल उसके साथ उसके घर चली चले। कोयले वाले के यहाँ मिलने पर भी प्रमोद प्रस्ताव रखता है परन्तु मृणाल कहती है कि वह घर तुम्हारा नहीं है। तुम्हारी माँ का है। अब प्रमोद की माँ की मृत्यु हो चुकी है। प्रमोद भी बड़ा वकील बन गया है। तब भी मृणाल उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती हैं। वह प्रमोद को कहती है कि वह अपने रुपये इस बस्ती के लोगों पर खर्च करे। यह वह नहीं कर पाता। समय बीतता जाता है। प्रमोद वकील से जज बन जाता है और एक दिन पता चलता है कि बुआ मर गई। प्रमोद के मन में भी पश्चाताप जाग्रत होता है और वह जजी से त्यागपत्र दे देता है। यहाँ आकर उपन्यास समाप्त हो जाता है। इस कथा के भीतर ही समाज, चिंतन, पात्रों का जीवन, उनका व्यक्तित्व सब चित्रित होते रहते हैं।

4.4 'त्याग–पत्र' के कथानक की विशेषताएँ

'त्याग–पत्र' के कथानक का ताना–बाना प्रमोद के वर्णन से आता है। वही मृणाल की कहानी कहता है। प्रमोद के इस कथ्य के दो भाग हैं – एक, जिन बातों, घटनाओं और प्रसंगों को प्रमोद ने स्वयं देखा है। अर्थात् वह उन घटनाओं का साक्षी है। दूसरे, कुछ घटनाओं के बारे में मृणाल उसे बताती है। वे सब प्रसंग प्रमोद बिना किसी अतिरिक्त जिज्ञासा के, पाठकों को सुना देता है। तीसरे, कुछ बातें अन्य पात्र मृणाल के बारे में बताते हैं। यह हिस्सा सूचनात्मक है। एक अनुभव या घटना को दूसरे अनुभव या घटना से जोड़ने के काम आता है, जिसे कथावाचक भी सूचना के स्तर पर ही सुनता है। जहाँ पर प्रमोद स्वयं उपस्थित रहता है या जहाँ मृणाल उसे घटनाओं की जानकारी देती है–उन प्रसंगों का वर्णन बहुत जीवंत है। मृणाल की कहानी का मर्म इन प्रसंगों में ही मिलता है। उपन्यास में शेष तो केवल जानकारियाँ मात्र हैं।

स्कूल के दिनों में मृणाल घर आकर स्कूल की शरारतें प्रमोद को सुनाया करती थी। उसी में शीला का प्रकरण भी है जिसमें शिक्षक की कुर्सी में कीलें शीला डालती है और मृणाल कह देती है कि 'यह कसूर मेरा है'। इसके बाद मास्टर जी जब उसे बेंत से मारते हैं तो न रोती है न चिल्लाती है। वह तो और भी मार खाने के लिए तैयार

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

है। इस आत्म पीड़ा को बर्दाश्त करने का नैतिक साहस मृणाल के चरित्र की अपनी विशेषता है। यहाँ पर यह मामूली शरारत के रूप में आता है, परन्तु आगे चलकर ऐसी घटनाएँ उसके जीवन का अंग बनती जाती हैं इसके बाद उपन्यास में दो बार बेंत से मार खाने का जिक्र आता है। एक बार प्रमोद की माँ द्वारा और दूसरी बार उसके पति द्वारा। पति द्वारा बेंत से पीटे जाने का साक्षी प्रमोद नहीं है। यह घटना उसे बुआ सुनाती है। शीला के भाई से संबंध की घटना की जानकारी मिलने पर प्रमोद की माँ मृणाल को बेंत से पीटती है। प्रमोद ने वर्णन किया है कि ''बेंत की पहली चोट पर तो एक चीख मुझको सुनाई दी थी, उसके बाद रोने–कल्पने की आवाज मुझे नहीं आई। बेंत तड़ातड़ पड़ रहे थे।'' पिटाई के बाद के दृश्य का वर्णन करते हुए प्रमोद ने लिखा है – ''बुआ औंधी पड़ी हुई है। उनकी साड़ी इधर–उधर हो गई है। जगह–जगह नील उभर आए हैं। कहीं–कहीं लहू भी छलक आया है। बुआ गुम–सुम पड़ी है न रोती है न सुबकती है। बाल बिखरे हैं और धरती पर पड़ी दोनों बाहों पर माथा टिका है।''

इससे पहले बुआ कहती है कि मैं बुआ होना नहीं चाहती। मैं चिड़िया होना चाहती हूँ। बुआ प्रमोद की माँ से वैसे भी कोई रिश्ता नहीं मानती। उसकी असवंदेनशीलता को ध्यान में रखते हुऐ उसे हमेशा 'तेरी माँ' सम्बोधन से पुकारती है। हालाँकि बुआ ने चुपचाप मार खा ली थी। कोई प्रतिकार नहीं किया था। परन्तु ''वह दिन था फिर बुआ की हँसी मैंने नहीं देखी''। वैसे तो मृणाल अपनी पीड़ा का कहीं वर्णन नहीं करती। एक बार वह ससुराल से वापिस आती है और फिर ससुराल जाना नहीं चाहती। तब पूछने पर वह कहती है कि ''बेंत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता। न यहाँ अच्छा लगता है न वहाँ अच्छा लगता है।'' ससुराल में शारीरिक प्रताड़ना का यह एक प्रमाण है। अन्यथा इस तरह की जानकारी उसके किसी अन्य कथन से नहीं मिलती और न ही लेखक ने कोई ऐसा संकेत उपन्यास में किया है।

'त्याग–पत्र' के कथानक को देखकर कई बार संदेह होता है कि लेखक ने मृणाल के जीवन की सीधी रेखा खींच रखी हैं। इसमें उनका उद्देश्य है कि मृणाल के जीवन को पीड़ा में रखा जाय। मृणाल खूबसूरत कन्या है। चुलबुली है। उसे जीवन का ज्ञान नहीं है। जो वैसे भी किशोरावस्था में बहुत मुश्किल से ही किसी के पास होता है। ऐसी कन्या को प्रेम का शिकार बनाया जा सकता है। शीला के घर भेजकर लेखक ने यह अवसर उपलब्ध करवा दिया। अब वह माँ बनने वाली है या बन सकती है। प्रमोद की अनुभवी माँ को इसका एहसास हैं। इसका समाधान यही सूझा कि जल्दी–जल्दी इसका विवाह कर दो। यहाँ उपयुक्त वर के चयन का अवकाश नहीं है। अतः जो मिल जाये उससे विवाह कर दो। मृणाल से बड़ी उम्र के व्यक्ति के साथ जैनेंद्र ने उसका विवाह करवा दिया। बेमेल विवाह से कुछ तो समस्याएँ होनी ही थी। मृणल के विवाह पूर्व शारीरिक संबंधों की जानकारी उसके पति को हुई। इसी आधार पर पति उसका परित्याग कर देता है। एक बार नादानी से यदि रिश्ता हो गया तो उसे घर से निकालने का विकल्प ही तो नहीं था। उसे पीहर भी पहुँचा सकता था परन्तु नहीं पहुँचाया और इस निर्दय समाज में मृणाल को अकेला छोड़ दिया। जैनेन्द्र कुमार को मृणाल के जीवन को पीड़ा में रखना था, ताकि उनके दर्शन को उचित ठहराया जा सके। अपने दर्शन को उचित ठहराने के लिए जैनेन्द्र ने ऐसी परिस्थिति को निर्मिति की। मृणाल कोयले वाले के साथ पूरा जीवन गुजार सकती थी, लेखक ने नहीं गुजारने दिया। कोयले वाले ने जब उसे निकाला तो एक अवसर उसके पास आया था कि वह मिशन में चली जाए। ईसाई मत स्वीकार कर ले, नहीं किया। यहाँ तक फिर भी गनीमत है। इसके बाद वह एक परिवार मे घरेलू नौकरानी बनती है। उसी

घर में जैनेन्द्र कुमार ने प्रमोद के विवाह का आयोजन कर डाला। इसका परिणाम यही होना था कि मृणाल को यहाँ से भी निकलना पड़ा। अब इतने सारे संयोग लेखक ने मृणाल के जीवन में ही क्यों डाले। सारे संयोग मृणाल के जीवन को पीड़ा मय बनाने के लिये ही किए गए होंगे। ये सब घटनाएँ और संयोग कथानक की अनिवार्यता का ही हिस्सा नहीं लगते, लेखक की योजना का हिस्सा भी लगते है।

'त्याग–पत्र' उपन्यास को जैनेन्द्र ने डायरी और संस्मरण की शैली में लिखा है। उपन्यास में कथा मृणाल की है, उसे न तो लेखक कहता है। न ही मृणाल कहती है, अपितु प्रमोद कथा का वाचक है। अब जितनी घटनाओं और स्थितियों का साक्षी प्रमोद रहा है, समझा है और सुना है, उसी का तो वर्णन कर सकता है। इस शैली के कारण कथानक की कई मूल बातें छूट जाती हैं। शीला का भाई अच्छा है। प्रमोद को भी उसे देखकर अच्छा लगा था। तब मृणाल और शीला के भाई का रिश्ता कैसे हुआ, क्या हुआ, पाठक को कुछ पता नहीं चलता। पाठक उस अँधेरे कोने से अनजान रहता है। इधर मृणाल अभी प्रेम में है और खुश है। इस प्रेम के कारण मृणाल की पिटाई हुई और अब वह दुःखी है, उपन्यास में माँ की बेचैनी, उनकी मानसिकता का वर्णन नहीं किया गया है। माँ के सामने एक सामाजिक संकट है। मृणाल का भाई मृणाल से प्रेम तो करता है, परंतु वह भी इस अनैतिक प्रेम–व्यापार का समर्थन नहीं कर सकता। पत्नी द्वारा की गई पिटाई से वह भी सहमत है और चुप रहकर उसका समर्थन करता दिखाई देता है। वह मजबूर अच्छा आदमी बनकर खड़ा रहता है। इस तरह कथा का अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा अकथनीय क्षेत्र में चला जाता है।

लेखक का ध्यान सिर्फ मृणाल पर है। लेखक मृणाल के संदर्भ में उपयुक्त जानकारियाँ देता चलता है, परन्तु पाठक प्रमोद को भी ठीक से पढ़ना-समझना चाहता है। मृणाल के पति को भी भली–भाँति जानना चाहता है। पाठक सबको जानना–समझना और पढ़ना चाहता है। लेकिन उपन्यास की वर्णन शैली इसकी अनुमति नहीं देती। ये सारे पात्र मृणाल के जीवन के लिये नरक का दरवाजा खोलने का काम करते हैं।

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित कथनों में से सही पर (√) तथा गलत पर (×) का निशान लगाइए :

   क) मृणाल बग्घी में बैठकर स्कूल जाया करती थी।
   (सही / गलत)

   ख) मृणाल ने अपनी नवजात बच्ची को मिशन को सौंप दिया।
   (सही / गलत)

   ग) उपन्यास का अंत होते–होते मृणाल प्रमोद के साथ उसके घर चली गई।
   (सही / गलत)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए (लगभग तीन–चार पंक्तियों में)–

   क) 'त्याग–पत्र' उपन्यास किस शैली में लिखा गया था ?

   ....

   ....

   ....

   ....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ख) राजनंदिनी का विवाह प्रमोद से क्यों नहीं हो पाया ?

....

....

....

ग) मृणाल को बेंत से किसने और क्यों मारा था ?

....

....

....

3. उचित विकल्प द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. मृणाल अपनी भाभी को ....कहकर संबोधित करती थी। (भाभी/प्रमोद की माँ)
2. प्रमोद की माँ मृणाल को .... की तरह बनाना चाहती थी। (आधुनिक लड़की/आर्य गृहिणी)
3. मृणाल अपने मैके में .... को सबसे अधिक प्यार करती थी। (प्रमोद को/अपने भाई को)

4.5 चरित्र–चित्रण

'त्याग–पत्र' उपन्यास का उद्देश्य मृणाल के जीवन को जानना–समझना है और उसके जीवन में लिए गए निर्णय किन स्थितियों–परिस्थितियों की देन थे, उसका अंकन करना है। उसका जज भतीजा प्रमोद यह प्रयास करता है। यही उपन्यास में अभिव्यक्त भी है। प्रमोद ने अपने बारे में, तथा अन्य पात्रों के संबंध में वर्णन किया है। इस उपन्यास में पात्र बदलते नहीं। उपन्यास के भीतर उनका विकास नहीं होता। ये पात्र जिस मानसिकता के साथ उपन्यास में आते हैं, वैसे ही वे अंत तक बने रहते हैं। पात्रों की यह विशेषता सहायक पात्रों के साथ–साथ प्रमुख पात्रों पर भी लागू होती है। सहायक पात्र तो जैनेन्द्र कुमार के अन्य उपन्यासों में भी लगभग यथावत बने रहते हैं, परन्तु नायक–नायिका विकसित हो जाते हैं। 'त्याग–पत्र' में ऐसा कुछ नहीं होता। आदर्शवादी भावुक प्रमोद का चरित्र उपन्यास के अन्त तक प्रारम्भ जैसा ही बना रहता है। मृणाल का पति, पिता, माँ और कोयले वाला जरा भी नहीं बदलते। यहाँ तक कि मृणाल के चरित्र में भी कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं होता। यद्यपि उसका जीवन बदलता है, परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, विकसित होती हैं, परन्तु मृणाल अन्त तक वैसी ही बनी रहती है। शायद उसको परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको बदलना नहीं आता। इसीलिए वह ट्रेजिक चरित्र बनी रहती है। यदि बदलना आता तो वह भी प्रमोद की तरह सफल चरित्र बन सकती थी। उसने यदि तय कर लिया कि अब उसे मैके नहीं जाना, तो वह अपने निर्णय पर अंत तक अडिग रहती है। प्रमोद लेने आता है तब भी स्पष्ट रूप से वह मना कर देती है।

4.5.1 मृणाल

मृणाल के जीवन की पीड़ा के दो मुख्य कारण है – यौन शुचिता की धारणा और पतिव्रता की धारणा। ये दोनों धारणाएँ भारतीय समाज में बद्धमूल है। जो कोई इन

धारणाओं से टकराता है या किसी भी कारण से इन धारणाओं के अनुरूप जीवन नहीं जी पाता, उसका जीवन नरक बन जाता है। ये दोनों धारणाएँ सिर्फ स्त्रियों पर लागू होती हैं। यौन–शुचिता तो इतनी बलवती है कि उस पर कोई चर्चा तक नहीं करता। मृणाल के जीवन में शीला का भाई आता है। उनके संबंधों का केवल आभास उपन्यास में दिखाया गया है। इस संबंध के कारण मृणाल को शारीरिक–मानसिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। इसी के कारण उसका बेमेल विवाह हो जाता है और इसी संबंध के कारण अन्ततः उसको अपना पति–गृह छोड़ना पड़ता है। इस अपराध के फलस्वरूप दिए गए दंड की कोई अपील नहीं होती। मृणाल भी कोई अपील नहीं करती और अन्ततः वह ऐसी जगह पहुँच जाती है जहाँ शुचिता की यह धारणा निरर्थक हो जाती हैं। पति जब बुआ को लेने आते हैं, तब यह कहना नहीं भूलते कि ''बहू–बेटियों की चलन की रीति–नीति हुआ करती है। अपने तो वही पुराने अकीदे हैं। अपना कुल–शील चला आता है, वह न निभा तो फिर क्या रह गया। जरा ये बातें समझा देनी चाहिए।'' इशारे से और समझाते हुए वे इसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पतिव्रता की धारणा की ही बात करते हैं।

प्रमोद की माँ जिस 'आर्य गृहिणी' की कामना करती है, वह यही है। प्रमोद के माता–पिता दोनों मृणाल को इस बात का दोषी मानते हैं कि मृणाल ने यौन–शुचिता की धारणा का खंडन किया है। चाहे जान बूझकर किया है या अपने आप हो गया है, परन्तु यह दोष है। इस दोष का ही उसे फल मिला। प्रमोद के माता–पिता इस दोष से तो फिर भी उबर गए, परन्तु मृणाल ने पतिव्रता धर्म का पालन नहीं किया। पति को छोड़कर वह किसी अन्य पुरुष के साथ रहने लगी। उसके भाई, भाभी तथा पति के अनुसार ऐसा संबंध रखना अक्षम्य है।

हालाँकि मृणाल कहती है कि मैंने पति को नहीं छोड़ा ''उन्होंने ही मुझे छोड़ा है। मैं स्त्री–धर्म पतिव्रत धर्म ही मानती हूँ। उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती। क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे।'' मृणाल भी अन्ततः उसी पतिव्रता धर्म को ही अपनाती है। उस से विद्रोह नहीं करती, बल्कि उसका नया अर्थ करती है। वह प्रमोद से कहती है, ''ब्याह के बाद मैंने बहुत सोचा, बहुत सोचा। सोचकर अंत में यह पाया कि मैं छल नहीं कर सकती। छल पाप है। हुआ जो हुआ, ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्ची होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है।'' इसी कारण मृणाल ने शीला के भाई से अपने संबंधों की सारी सच्चाई अपने पति को बता दी थी। यही सच्चाई और ईमानदारी उसकी शत्रु बन जाती है परन्तु वह अंत तक संबंधों में ईमानदार ही रहती है।

पति के द्वारा निकाले जाने पर वह मायके क्यों नहीं आई, इस प्रश्न पर मृणाल कहती है कि ''स्त्री जब तक ससुराल की है, तभी तक मैके की है, ससुराल से टूट, तब मैके से तो आप ही टूट गई थी।'' इस कारण उसकी छवि 'बदजात की व्यभिचारिणी' की बन गई। वह मानती है और जानती है कि ''विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं, व्यवस्था का प्रश्न है।'' मृणाल को जब दुबारा जबर्दस्ती ससुराल भेजा जाता है तब वह अपने भाई के सामने फूट–फूट कर रोती है। वह इसलिए रोती है क्योंकि भाई को अपना मानती है। भाभी से उसका अपनत्व का संबंध नही ंके बराबर है। यद्यपि भाभी भी थोड़ी भावुक होती है। इस भावुकता से उनका चरित्र थोड़ा भला लगने लगता है। परन्तु भाई इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सामने विवश है। जैसे मृणाल व्यवस्था के समक्ष बेबस है, वैसे ही उसके भाई भौजाई भी बेबस हैं। इसी तरह प्रमोद भी इन सारी

परिस्थितियों के सामने बेबस है। यह बेबसी पारिवारिक–सामाजिक व्यवस्था के समक्ष समर्पण की थी। यह बेबसी स्त्री के अधिकार हीनता की स्वीकृति थी।

यही कारण है कि मृणाल का भाई उसे समझाता है। वह कहता है कि ''पति के घर के अलावा स्त्री को क्या आसरा है। यह झूठ नहीं है, मृणाल कि पत्नी का धर्म पति है। घर पति–गृह है। उसका धर्म, कर्म और उसका मोक्ष भी वहीं है।'' दरअसल मृणाल के कष्टों का कारण यह दर्शन और ऐसी समझ है। उसके कष्ट के लिए जितने जिम्मेदार उसके पति हैं, उतने ही जिम्मेदार प्रमोद के माता–पिता भी हैं। पहली बार मृणाल की जो पिटाई हुई थी, वह प्रमोद की माँ ने की थी। उसके मूल में यौन–शुचिता की धारणा थी। यह प्रमोद की माँ के मन में गहरी बैठी हुई थी। साथ ही वह यह भी देख रही थी कि यह धारणा अपने आसपास के समाज में भी बद्ध मूल है। पिता द्वारा मृणाल को समझाते समय उनकी वाणी 'क्षमाप्रार्थिनी' हो जाती है, क्योंकि बहिन से प्रेम और सामाजिक मान्यताओं में जब तीक्ष्ण अन्तर्विरोध हुआ, बहिन को जब भाई की आवश्यकता पड़ी तो भाई, बहिन के साथ खड़ा नहीं दिखा, बल्कि सामाजिक मान्यताओं के साथ खड़ा पाया गया। भाई को भी लगा कि यह गलत हो गया, परन्तु वह असहाय है। इन परिस्थितियों में मृणाल को तो जाना ही था। मृणाल के साथ जो कुछ हुआ, वह तो होना ही था, वही हुआ। इस तरह मृणाल की ट्रेजडी परिवार को स्वीकार्य हो गई। यह अलग बात है कि किसी व्यक्ति की विवशता और सामाजिक व्यवस्था के प्रति समर्पण उसके द्वारा उठाए कदम को उचित नहीं ठहरा सकता।

इस बेबसी के बावजूद सबका जीवन सुरक्षित है। प्रमोद के माता–पिता घर में खुशहाल हैं। सब सुख–सुविधाएँ हैं। मध्यवर्गीय सुख–सुविधा के साधन मौजूद हैं। प्रमोद भी सफल वकील बनने के बाद जज बन जाता है। सब अपनी विवशता के नाम पर तटस्थ हो गए, लेकिन इस तटस्थता से मृणाल का जीवन नरक बनता चला गया। देखते ही देखते कोई अपना इस हालत में पहुँच जाए और हम सुरक्षित बचे रहें, तो अन्ततः हम अपने आपको उचित नहीं ठहरा सकते। यही कारण है कि संवेदनशील प्रमोद भी अपने आपको उचित नहीं ठहरा पाता–''समाज की जिस मान्यता पर मैं ऊँचा उठा खड़ा हूँ, वह स्वयं किसके बलिदान पर खड़ी है, इस बात को मैं जितना ही समझकर देखता हूँ, उतना ही मन तिरस्कार और ग्लानि से घिर आता है। पर मैं क्या करूँ?''

मृणाल का अकेलापन और वह भी अपने पीहर में उसका अकेलापन बहुत मारक है। वह कहती है कि उसका कोई नहीं है। उसे कोई बताने वाला नहीं है, समझाने वाला नहीं है, समझने वाला नहीं है। उसकी अभी उम्र ही क्या है, जो देश, दुनिया, समाज और अपने आपको समझ सके। मृणाल का जीवन इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध मौन चीत्कार है। एक ऐसी चीत्कार है जिसे हिंदी समाज ने अनदेखा किया है। वह नहीं जानती कि वह क्या करे। वह सारी दुनिया को वह अपने विरुद्ध खड़ा पाती है। माँ–बाप होते तो एक बात थी। भाई–भौजाई, पति, कोयले वाला–सभी पित्तृसत्ता की मान्यता पर टिके हुए हैं, मृणाल इन सबके बीच अकेली खड़ी है, नादान, भोली, नासमझ, फिर भी दृढ़ हठी। सब के अत्याचार के खिलाफ एक चुप्पी लेकर। जबर्दस्ती उसे ससुराल भेजा रहा है। भतीजा बुआ की स्थिति को देखता है और लिखता है ''ज्यों ज्यों जाने का दिन आता उनकी निगाह कुछ बंधती–सी जाती थी। जहाँ देखती, देखती रह जाती थी। जैसे सामने उन्हें और कुछ नहीं दीखता, बस भाग्य दीखता है, और भाग्य चीन्हा नहीं जाता। ऐसी अपेक्षित पूछती हुई सी निगाह से देखती मानो

प्रश्न रोककर भी उत्तर मांगती है कि 'मैं कुछ चाहती हूँ, पर अरे कोई बताएगा कि क्या ....।'' यही मृणाल एक बार प्रमोद के सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करती है, ''सच जान, प्रमोद मैंने कुछ नहीं किया। मेरी मति भ्रष्ट हो गई है। मुझे कुछ ठीक सूझता नहीं है। मैं जो करती हूँ क्या जानती हूँ? यहाँ मुझे कोई भी बताने वाला नहीं है। अपने मन की मैं किस से कहूँ? प्रमोद मेरी कुछ समझ में नहीं आता है।'' इसी नासमझी और संप्रेषणीयता की कमी से वह जीवन में अनपेक्षित निर्णय लेने के लिए विवश हो जाती है।

4.5.2 प्रमोद

'त्याग–पत्र' में लेखक सिर्फ मृणाल का चरित्र उद्घाटित करना चाहता है। ऐसा वह उसके भतीजे प्रमोद के माध्यम से करता है। मृणाल की कहानी प्रमोद सुनाता है। इस प्रक्रिया में प्रमोद का चरित्र भी उद्घाटित होता रहता है। वह न्याय प्रिय है, संवेदनशील है, नीति–सम्मत चिन्तन करता है, भावुक है, मृणाल की स्थिति पर दुखी होता है, परन्तु वह कुछ कर नहीं सकता। केवल साथ रहकर मृणाल के दुःख को महसूस कर पाता है। बचपन में हमें जिससे प्रेम मिलता है, उससे हमारा प्रेम जीवन भर बना रहता है। ऐसा प्रेमी व्यक्ति चाहे जैसा भी नैतिक या अनैतिक कार्य करे, हम उसके साथ खड़े रहते हैं और यही प्रमोद भी करता है। बुआ के पति प्रश्नविहीन संबंध भावना प्रमोद की अपनी विशेषता हैं। मृणाल उसे जो काम सौंपती है, वह कर देता है। घरवालों को बिना बताए शीला के भाई को चिट्ठी दे आता है। बुआ के लिए जमालघोटा ले आता है। माँ के मना करने के बावजूद मृणाल से अपना सम्पर्क बनाए रखता है। हर बार उसे अपने घर ले जाने का आग्रह करता है। उपन्यास में वह अकेला ऐसा पात्र है, जो मृणाल को सुनता है और उसके दर्द को महसूस करता है। उसके लिए दुःखी रहता है। भले ही वह निष्क्रिय रहता है और मृणाल की स्थितियों को परिवर्तित करने के लिए चाहकर भी कुछ कर नहीं पाता। उपन्यास में उसकी कोई सक्रिय भूमिका नहीं है। उसकी इस संवेदनशीलता और मृणाल के प्रति प्रेम के कारण मृणाल कहती है कि ''तुम्हारे अकेले के कारण मैं उन तमाम भद्र वर्ग को अप्रेम करने से बची हुई हूँ।''

अपनी इस अकर्मण्यता के कारण उसके मन में अपराध–बोध भी पनपता है। अपने स्वार्थ की आलोचना करते हुए वह सोचता है कि ''मैं बुद्धिमान था, मूर्ख नहीं था। तौल–तौल कर चला और तराजू अपने हाथ में रखी।'' इसीलिए तो वह जज बन गया। अंततः उसका निष्कर्ष यह है कि ''जो जगत की कठोरता का बोझ इच्छापूर्वक अपने ऊपर उठाकर चुपचाप चले जाते हैं और फिर समय आने पर इस धरती माता से लगकर उसी भाँति चुपचाप सो जाते हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूँ। मैं उनको अभागा भी कह लूंगा, पापी भी कह लूँगा–लेकिन मैं उनको प्रणाम करता हूँ।''

प्रमोद जब बड़ा होता है तो वह बुआ के लिए कुछ करना चाहता है। लेकिन स्वाभिमानी बुआ कुछ करने नहीं देती। अपने जीवन के अंतिम दिनों में मृणाल प्रमोद से रूपये माँगती है। वह रूपये अपने लिये नहीं माँगती वरन् जिस 'सड़ांद' में वह रहती है उस सड़ांद में रहने वालों के लिए माँगती है और प्रमोद नहीं दे पाता। प्रमोद का अपना अपराध–बोध था कि ''मैं क्षुद्र था।'' इसी अपराध–बोध के कारण वह 'जजी' से त्यागपत्र दे देता है। लेखक प्रमोद के अपराध-बोध से उत्पन्न इस कृत्य को महत्वपूर्ण मानकर उपन्यास का शीर्षक ही 'त्याग–पत्र' रख देता है।

4.5.3 अन्य पात्र

उपन्यास में मृणाल और प्रमोद के अलावा भी कुछ पात्र हैं। इनकी तरफ लेखक ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उन पात्रों में से एक पात्र प्रमोद की माँ है, जो रिश्ते में मृणाल की भाभी लगती है, लेकिन मृणाल उसे हमेशा **प्रमोद की माँ** के रूप में जानती और पुकारती है। उपन्यास के प्रारंभ में जब 'प्रमोद इस परिवार का परिचय देता है तब माँ के बारे में कहता है। वह कुशल गृहिणी थी। ''जैसी कुशल थी, वैसी कोमल भी होती तो.......?'' इसी कारण उसका अनुशासन कठोर था। वह बुआ को 'आर्य गृहिणी' बनाना चाहती थी। इसलिए जब उसे मृणाल और शीला के भाई के संबंधों का पता चला तो उसने उसे अक्षम्य अपराध मानकर मृणाल को बेंत से पीटा। प्रमोद का मत था कि माँ ''मेरी बुआ का कम प्रेम करती थी, यह किसी हालत में नहीं कहा जा सकता।'' शादी के बाद जब मृणाल ससुराल जाने लगती है तब वह उसे भावुक आशीर्वाद देती है। वे सारे आशीर्वाद परंपरागत भारतीय नारी के गुणों के अनुरूप दृष्टिगत होते हैं। जब बुआ ने अपने पति का घर छोड़ दिया, तब प्रमोद की माँ मान लेती है कि मृणाल उसके लिए मर गई। उसने कठोरता से प्रमोद को मृणाल से मिलने से रोक दिया था। प्रमोद की माँ की मानसिकता, राय और व्यक्तित्व के कारण ही मृणाल ने यह तय कर लिया कि उसे कभी मैके नहीं जाना है।

प्रमोद के पिता मृणाल को बहुत प्यार करते थे। मृणाल भी उन्हें अपना मानती थी। लेकिन वे अपनी पत्नी द्वारा मृणाल को दण्डित किये जाने से सहमत थे, परन्तु बहन से प्रेम के कारण खामोश थे। मृणाल को ससुराल जाना था, परन्तु मृणाल जाना नहीं चाहती थी। उस समय भी प्रमोद के पिता मृणाल के साथ खड़े नहीं हुए, उसे जबर्दस्ती ससुराल भेजा। वे निष्क्रिय किंतु सज्जन व्यक्ति थे। वे यदि गृह स्वामी की तरह आदेश देते और मृणाल को अपने घर में आने देते, रहने देते तो मृणाल का जीवन इतना पीड़ामय नहीं होता। लेकिन वे सामाजिक रूढ़िवादी परंपराओं के समर्थक थे। उनके लिए भावुकता और प्रेम से बड़ी चीज है– सामाजिक प्रतिष्ठा और मान्यताएँ। घर की लड़की विवाह पूर्व किसी लड़के या पुरुष से प्रेम न करे, इस मान्यता में वे अपनी पत्नी के साथ थे।

मृणाल के पति उम्र में थोड़े बड़े थे। स्वभाव से कठोर थे। सामाजिक मान्यताओं को वे मानते थे। पुराने जमाने के मूल्य बोध के अनुसार अपना परिवार चलाना चाहते थे। मृणाल ने जब उस नैतिकता के विपरीत कुछ किया, सच्ची तथा ईमानदार अभिव्यक्ति की और शीला के भाई के संदर्भ में उन्हें बताया, तो उन्होंने मृणाल को बेंत से मारा और घर से निकाल दिया। मृणाल से जब पूछा गया कि तुम्हें क्यों मारते हैं, मृणाल कहती है, कि ''मैं खराब हूँ, इसलिए मारते हैं?'' इसी तरह कोयले वाला भी एक दिन उसे मार पीट कर छोड़कर चला जाता है। उसके पास अपने तर्क हैं। 'त्याग–पत्र' में कोई भी खल पात्र नहीं है। सबके पास अपने द्वारा किए गए कृत्य के तर्क हैं। इसलिए मृणाल किसी को दोष नहीं देती। लेखक भी किसी को दोषी नहीं ठहराता। शीला का भाई सिविल सर्जन बन गया है। वह आत्मग्लानि से पीड़ित है। उसका मानना है कि उसने मृणाल के साथ गलत किया है। इसलिए उस प्रायश्चित में वह जीवन भर विवाह न करने का निर्णय लेता है। प्रमोद भी अपने एकांत क्षणों में अवश्य सोचता है कि ''आज बुआ की अवस्था है, उसके लिए मैं स्वयं जिम्मेदार नहीं हूँ, यह बात चित्त पूरी तरह नहीं मान पाता था।''

4.6 परिवेश

किसी भी उपन्यास की कथा का चित्रण विशेष परिवेश में होता है। उसी परिवेश में घटनाएँ घटित होती हैं, तथा पात्रों का चरित्र–चित्रण होता है। इस परिवेश को पात्रों और कथा की संगति में होना चाहिए, तभी कोई उपन्यास अपना अभिप्रेत संप्रेषित कर पाता है। उदाहरण के लिए भारतीय समाज का चित्रण करने के लिए किसानों का परिवेश ग्रामीण जीवन में जुड़ा हुआ होना चाहिए। शिक्षित पात्र नगरों में निवास करते हैं तथा धनी वर्ग साइकिल से नहीं चलते, उनके पास कार होती है। ये सारे बिंदु उपन्यास के परिवेश का अंग होते हैं। इसका यथार्थ चित्रण उपन्यास की कथा को विश्वसनीय बनाता है, अन्यथा उपन्यास की कथा अविश्वसनीय लगने लगती है और पाठक रचना को पढ़ने के बीच में छोड़कर चला जाता है। कथा और पात्र को विश्वनीयता प्रदान करने के उपरांत परिवेश अपना पृथक अस्तित्व खो देता है तथा उसकी तरफ पाठक का ध्यान नहीं जाता।

त्याग–पत्र का परिवेश

'त्याग–पत्र' के प्रमुख पात्र मृणाल और प्रमोद हैं। इनका परिवेश संपन्न मध्यवर्गीय परिवार है। ''प्रमोद के पिता प्रतिष्ठा वाले थे और माता अत्यंत कुशल गृहिणी थी। जैसी कुशल थी, वैसी कोमल होती तो ....?'' यहाँ से उपन्यास का सामाजिक परिवेश प्रकट होता है। ''धनी भले ही न हो, परन्तु अच्छा खाता–पीता परिवार था। मृणाल शहर के बड़े स्कूल में बग्घी में पढ़ने जाती थी।''मृणाल की सहेली शीला भी सुखी मध्यवर्गीय परिवार से संबद्ध है। मृणाल अपनी सहेली शीला के घर जाती है। शीला के भाई से उसका संबंध होता है। वह भी शिक्षित नौजवान था। मृणाल का विवाह कर दिया जाता है। वह अपने ससुराल में जाती है। ससुराल भी अच्छा खाता–पीता परिवार था। उसके पति के पास कार थी, जो उस युग को ध्यान में रखते हुए संपन्न परिवार का लक्षण था। ससुराल में उसको और चाहे जो कठिनाइयाँ हों, परन्तु आर्थिक परेशानी कुछ भी न थी।

पति के घर से निकलकर जब मृणाल कोयले वाले बनिये के घर में रहने लगती है, तब उसका सामाजिक–आर्थिक परिवेश बदल जाता है। वर्गीय दृष्टि से यह दूसरी दुनिया थी। यहाँ उसको आर्थिक अभाव में रहना पड़ा। इस घर का वर्णन करते हुए प्रमोद कहता है, "कहाँ बुआ, कहाँ इस जगह थी गंदगी? वहाँ नीचे दर्जे के लोग रहते थे। भीतर गली में गहरे जाकर बुआ की कोठरी थी। बनिया बाहर एक दूकान लेकर वहाँ दिन में कोयले का व्यवसाय करता था। "

"इधर बुआ को देखा तो देह दुबली थी, मुख पीला था। गर्भवती थी। एक धोती में अपनी सब देह ढाँके बैठी थी। मुंह पर क्या लाज की छाया आ गई थी। कोठरी बारह फीट वर्ग से बड़ी न होगी। बाहर थोड़ी खुली जगह थी, जहाँ धोती, अँगोछे सूख रहे थे।"

उपन्यास ज्यों–ज्यों विकसित होता जाता है, मृणाल के जीवन के साथ उसका परिवेश भी बदलता जाता है। मृणाल का चरित्र भले ही अपरिवर्तनशील रहा हो, परन्तु उसके जीवन का वातावरण बदलता जाता था और मृणाल हर परिस्थिति में अपने आपको ढाल लेती थी। मृणाल के जीवन का अंतिम परिवेश कैसा था। "जहाँ नगर की सड़ाँद रहती हैं, वहाँ रहती थी। अधेड़ अवस्था की वेश्याएँ, बेकार मजदूर, पेशेवर भिखमंगे, कानून की आँख और चंगुल से बचकर छिपे–उधड़े काम करने वाले उच्च लोगों के

रहने की वह जगह थी।" इस तरह भद्र मध्यवर्गीय समाज से समाज की तलछट तक मृणाल का जीवन चलता है और लेखक विस्तार से इन स्थितियों का वर्णन करता चलता है। मृणाल भद्र मध्यवर्गीय परिवेश से 'सड़ाँद' में रहने को स्वीकार करती है और अपने भतीजे प्रमोद के बार–बार कहने पर भी अपनी परिस्थितियों से समझौता कर उसके साथ नहीं जाने का निर्णय लेती है।

4.7 संरचना और शिल्प

'त्याग–पत्र' डायरी और संप्रेषण की शैली में लिखा हुआ उपन्यास है। हम प्रेमचंद के उपन्यास से तुलना करके 'त्याग–पत्र' की संरचना और शैली को समझ सकते हैं। प्रेमचंद लेखक के रूप में अपने उपन्यासों की कथा कहते हैं। वे पूरे समय उपन्यास में उपस्थित रहते हैं। कथा चरित्र और घटनाओं का वे स्वयं वर्णन करते जाते हैं और उसका अर्थ भी करते जाते हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में लेखक प्रत्येक स्थिति पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करने के लिए उपस्थित रहता है। उनके उपन्यास की कथा का आरम्भ होता है, फिर कथा विकसित होती है अगर अंत में किसी निष्कर्ष पर पहुँच कर समाप्त हो जाती है।

'त्याग–पत्र' में ऐसा नहीं होता। इस उपन्यास के प्रारम्भ में ही लिखा हुआ है कि यह मौलिक सामाजिक उपन्यास है और इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। अर्थात यह अनुवाद नहीं है। इसके बाद उपन्यास से जैनेन्द्र कुमार गायब हो जाते हैं। पाठकों को यह सूचित किया गया है कि यह उपन्यास अंग्रेजी में लिखा गया है, जिसका हिंदी उल्था यहाँ दिया गया है। इसे सर एम. दयाल ने लिखा है जो संयुक्त प्रांत के चीफ जज थे। फिर उन्होंने जजी से त्यागपत्र दे दिया और हरिद्वार में जाकर रहने लगे। दो महीने पहले उनका स्वर्गवास हो गया। उनके कागजों में यह पाण्डुलिपि मिली है, जिसमें व्यक्तियों और स्थानों के कुछ नाम बदल दिए हैं। यह हम आपको पहले भी बता चुके है। अब इस उपन्यास में से एम. दयाल अनुपस्थित हो जाते हैं। यहाँ प्रमोद नामक नया पात्र आता है। यह प्रमोद उस उपन्यास का कथावाचक है, जो अपनी बुआ मृणाल के जीवन की कहानी कहता है। आरम्भ में ही यह भी बता दिया जाता है कि मृणाल की मृत्यु हो चुकी है। प्रमोद अपने पद से त्यागपत्र दे देता है। इस संरचना के भीतर यह उपन्यास लिखा हुआ है। उपन्यास का अंत होते–होते एम. दयाल फिर आते हैं और अपना त्यागपत्र लिखते हैं और उपन्यास समाप्त हो जाता है। इसको इस तरह से समझ सकते हैं– लेखक जैनेन्द्र कुमार→चीफ जज सर एम. दयाल→कथावाचक प्रमोद→कथा की प्रमुख पात्र मृणाल→और अंत में उपन्यास के पाठक।

कथा के प्रारम्भ में ही पता चलता है कि मृणाल की कारुणिक मृत्यु हो चुकी है, इसलिए पूरी कहानी करुणा से ओत–प्रोत है। इसमें प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की कहानी कहता है। इस प्रक्रिया में प्रमोद का अपना व्यक्तित्व भी उद्‌घाटित होता चलता है। मृणाल की कहानी को हम प्रमोद की आँखों से देखते हैं। मृणाल यदि स्वयं अपनी कहानी कहती तो उसमें कुछ और नई बातें आ सकती थीं या लेखक स्वयं कहता, तब भी कथा की संरचना बदल जाती। परन्तु ऐसा नहीं हो पाया। प्रमोद ने जैसा देखा, जितना देखा, उतना और वैसा ही वर्णन हमें दिखाई देता है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि यह वर्णन एकांगी और कथावाचक की दृष्टि से अभिव्यक्त हुआ है। घटना के जिस स्थान पर प्रमोद उपस्थित है, उसी का संस्करण वह सुना सकता है। जब वह अनुपस्थित रहता है तब वह सूचनाओं के सहारे कथा के तार जोड़ता है।

अंदाजा लगाता है या आत्म चिंतन के लिए वह कुछ निष्कर्ष निकालता है। यह अत्मचिंतन डायरी की तरह बन जाता है। इस तरह यह प्रामाणिक अनुभव तो है, परंतु यह एकांगी हो सकता है। हालाँकि प्रमोद अपनी तरफ में पर्याप्त तटस्थ बने रहने का प्रयास करता है और बुआ के साथ के संवादों और अपने वक्तव्यों के माध्यम से चरित्रों को उद्‌घाटित करने का प्रयास करता रहता है।

4.7.1 संवाद योजना

'त्याग–पत्र' में संवाद बहुत कम हैं। लेखक प्रमोद के माध्यम से वर्णन करता जाता है। जहाँ वह उपस्थित रहता है, वहाँ जो कुछ सुनता है, उन्हें वह पुनः प्रस्तुत करता है। इन संवादों के माध्यम से पाठक को मृणाल की मनःस्थिति, उसकी सामाजिक स्थिति और उसके विचारों का पता चलता है। यह अवश्य है कि इन संवादों में मृणाल बहुत तर्कशील, जीवंत और इसी पात्र के रूप में हमारे सामने आती है। प्रमोद और मृणाल की बातचीत हो रही है। मृणाल बीमार है।

''चलो, तुम्हें यहाँ के अस्पताल में भर्ती करा दूँ।''

उन्होंने कहा–जो बात मैंने कही वह तेरी समझ में नहीं आई न। चलो ठीक है। नहीं भाई, अस्पताल में क्यो जाऊँगी।

मैंने बताया–अस्पताल में इंतजाम ठीक हो जाएगा। प्राइवेट वार्ड में कर दूँगा। खर्च की फिक्र कुछ मत करो, बुआ।

बुआ ने बीच में टोक कर कहा–''लेकिन वही तो फिक्र मुझे है, प्रमोद। तुम बहुत सा रुपया दे जाओ तो क्या अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में दौड़कर मैं चली जाने वाली हूँ? प्रमोद देह है, तब तक दस बीमारियाँ लगी हैं। घबराहट किस बात की है।''

बातचीत का तरीका बहुत सहज है। असहमतियाँ भी बहुत आत्मीय तरीके से व्यक्त की गई हैं। भाषा भी सहज बोधगम्य है। इस तरह भाषाओं और कला की दृष्टि से सम्प्रेषण की कोई समस्या नहीं है। हालाँकि विचार के स्तर पर गंभीरता बराबर बनी रहती है, जो प्रमोद को बैचेन करती रहती है और पाठक भी सोचता रहता है कि दोनों की बातचीत का क्या निर्णय होने वाला है।

'त्याग–पत्र' उपन्यास का आरंभ जिस स्थिति से होता है और जो उपन्यास का अंतिम हिस्सा है, वह एक तरह का आत्म संवाद है। प्रमोद के पास खबर आती है कि मृणाल मर गई 'कैसे मर गई– जानने की कोई जरूरत नहीं है। जो जाने बैठा हूँ, वही कम नहीं है। उसी को पचा सकूँ, तो कुछ का कुछ न–जाऊँ।'

बुआ, तुम गई। तुम्हारे जीते जी में राह पर न आया। अब सुनो, मै यह जजी छोड़ता हूँ। जगत् का आरंभ–समारंभ ही छोड़ दूँगा।

यदि इस उपन्यास की शैली और संरचना को देखा जाए तो यह पूरा उपन्यास संवादपरक है। यह संपूर्ण उपन्यास श्रोता को संबोधित है। प्रमोद किसी को मृणाल की कथा सुनाता है। मृणाल की कथा लिखता नहीं है। इसलिए इसमें आई हुई घटनाएँ और प्रकरण बहुत सीमित है। चीजों का और दृश्यों का वर्णन विवरण बहुत कम है। संवाद भी बहुत छोटे–छोटे हैं। बड़ी बातें भी सहज बोधगम्य रूप से सुनकर समझ में आने लायक है।

संवाद के रूप में लिखने के बावजूद इसमें पात्रों का आपसी संवाद बहुत कम होता है। मृणाल और कोयले के बीच कोई बातचीत नहीं होती। प्रमोद के माता–पिता भी

आपस में कोई संवाद नहीं करते। प्रमोद की माँ मृणाल से शायद ही कुछ बोलती है। व्यक्तिगत रूप से संवाद मृणाल और प्रमोद के बीच में होता है। इन संवादों से मृणाल का चरित्र अभिव्यक्त होता है। पाठक प्रमोद की मानसिक स्थिति से अवगत होता है। संक्षिप्त बातचीत से कथा आगे बढ़ती है या पिछले जीवन की जानकारी मिलती है। यह जानकारी प्रमोद अपने पाठकों या श्रोताओं को दे देता है। इन संवादों से ही हमें पता चलता है कि मृणाल अपने ढंग से नैतिक जीवन जीती है या वह जैसा भी जीवन जीती है,उसकी अपने लिए नैतिक व्याख्या कर लेती है।

सारे संवाद मुद्दे पर केन्द्रित हैं और मुद्दा हमेशा संक्षिप्त होता है। मुद्दे के आसपास की बातें ये दोनों पात्र बहुत कम करते हैं। उदाहरण के लिए मृणाल सहज रूप से बता देती है कि वह ''कोइले वाले के बच्चे की माँ बनने वाली है'' या ''यह कोइले वाला अब जल्द ही उसे छोड़कर चला जाएगा।'' बड़ी घटनाओं की जानकारी भी मृणाल सहज रूप से दे देती है। उसमें किसी तरह का कोई भावात्मक आवेग या आक्रोश नहीं होता। बातें तथा घटनाएँ कथन की तरह आती हैं, परन्तु कथावाचक पर और इस तरह पाठकों पर उनका गहरा असर पड़ता है। और यही इस उपन्यास की कला की सफलता है।

4.7.2 भाषा

जैनेन्द्र कुमार की भाषा प्रेमचंद की भाषा परंपरा से भिन्न है। 'त्याग-पत्र' में जैनेन्द्र कुमार ने उर्दू–फ़ारसी मिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग नहीं किया। वे आमतौर पर सरल तत्सम शब्दों से युक्त सहज भाषा का प्रयोग करते हैं। इसके साथ ही वे जयशंकर प्रसाद की भाँति आलंकारिक तत्सम शब्दों का प्रयोग भी नहीं करते। वे अपनी भाषा को भरसक काव्यात्मक होने से बचाते हैं। इनकी भाषा प्रौढ़ और गंभीर है। चूँकि 'त्याग–पत्र' एक चिंतनपरक उपन्यास है, इसलिए इसकी भाषा भी चिंतनपरक है। वे हास्य का प्रयोग लगभग नहीं करते। कई बार उनकी भाषा में व्यंग्य अवश्य आता है, परन्तु यह व्यंग्य भी मर्यादा की सीमा में रहता है। मृणाल और प्रमोद दोनों औपचारिक और गंभीर भाषा में सोचते और बोलते हैं। अपना क्रोध और नाराजगी भी वे संयत भाषा में अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए मृणाल का पति मृणाल को अपने घर से निकाल देता है। उस समय भी उसकी भाषा असंयत नहीं होती। वह सहज, सरल और संयत स्वर में मृणाल से कहता है– ''मैं तेरा पति नहीं हूँ'' या ''हाँ जाओ। अपने मैके चली जाओ।'' या ''फिर जो चाहे कर, चाहे जहाँ जा।''

प्रमोद का चिंतन भी इसी गंभीरता से चलता रहता है, ''आज जो बुआ की अवस्था है, उसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार नहीं है, यह बात चित्त में पूरी तरह नहीं मान पाता था। फिर भी इस अवस्था में भी बुआ के व्यवहार में कुछ ऐसी वास्तविकता थी कि मेरे लिए संभव न हुआ कि मैं अपने अहं भाव में उन पर घमण्ड करूँ।

'त्याग–पत्र' की भाषा में मंथरता, सहजता है, साथ ही किसी प्रकार का आक्रोश और भावाकुलता नहीं है। सारी पीड़ा भीतरी है और इस भावाकुल पीड़ा के बाद की निश्चिंतता रचना में आद्योपांत मौजूद है। इस उपन्यास में कोई खल पात्र नहीं है और इस रूप में कोई नायक–नायिका भी नहीं है। फिर भी लेखक अपनी तरफ से न तो किसी को दोष देता है और न ही विशेष टिप्पणी करता है। इस कारण 'त्याग-पत्र' की भाषा में एक तटस्थता और वस्तुपरकता है–'मन में एक गाँठ–सी पड़ती जाती थी। वह न खुलती थी, न घुलती थी। बल्कि कुछ करो, वह और उलझती और कसती ही जाती थी। जी होता था, कुछ होना चाहिए, कुछ करना चाहिए। कहीं कुछ गड़बड़ है।

कहीं क्यों, सब गड़बड़ ही गड़बड़ है। सृष्टि गलत है। समाज गलत है। जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊँटपटाँग है। इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है।'' भाषा की यह मंथरता संपूर्ण उपन्यास में एक जैसी बनी रहती है, जो उपन्यास की प्रभावात्मकता का एक बड़ा कारण है।

4.7.3 शैली

जैनेन्द्र कुमार का यह उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा हुआ उपन्यास नहीं है। ऐसी वर्णनात्मक शैली का प्रयोग प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलता है। जैनेन्द कुमार ने आत्मकथात्मक और संस्मरणात्मक शैली में इस उपन्यास की रचना की है। वर्णनात्मक शैली में लेखक स्वयं सर्वज्ञ होता है तथा वही संपूर्ण घटनाओं का वर्णन करता है। जबकि इस उपन्यास में लेखक से अलग एक कथावाचक है। इस कथावाचक से अलग एक लेखक की कल्पना भी की गई है जो आगे चलकर कथावाचक से अभिन्न हो जाता है। यह कथावाचक पाठकों को अपनी बुआ मृणाल के जीवन की कहानी सुनाता है अर्थात् इस उपन्यास का पाठक एक तरह का श्रोता है। प्रमोद बुआ की कथा सुना रहा है। चूँकि इन कथाओं का साक्षी प्रमोद होता है, अतः वह अपनी समझ और जानकारी से पाठकों को अवगत कराता चलता है। पाठक को तो विशेष वर्णन भी पढ़ा सकते हैं, लेकिन श्रोता के पास न इतना धैर्य होता है और न इतना समय होता है, इसलिए संक्षेप में मूल बात और घटनाओं को कह दिया जाता है। उपन्यास में जहाँ प्रमोद अनुपस्थित रहता है, वहाँ की सूचनाएँ पाठक को अन्य पात्रों से मिलती है। इन अन्य पात्रों में उपन्यास की नायिका मृणाल को भी शामिल किया जा सकता है।

इस उपन्यास में कथावाचक सिर्फ मृणाल की कहानी ही नहीं कहता, वरन् अपनी प्रतिक्रियाओं से भी वह पाठकों को भी अवगत कराता चलता है। इसलिए उपन्यास में दो प्रमुख पात्र उभरकर आते हैं। एक कथावाचक प्रमोद और दूसरा उपन्यास की नायिका मृणाल। संस्मरण शैली में प्रमोद और मृणाल दोनों का जीवन और घटना हमारे सामने आती है। जैनेन्द्र कुमार का यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास की श्रेणी में माना जाता है। अतः इसमें मृणाल के भाव और विचारों को व्यक्त करने पर अधिक जोर दिया गया है। बाहरी परिवेश और जीवन का उतना ही वर्णन किया गया है, जिससे मृणाल या प्रमोद का संबंध है। यहाँ जीवन को महसूस करना महत्वपूर्ण है। इसलिए प्रमोद की माँ या शीला का भाई, या मृणाल का पति या कोइले वाला महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण वे भाव और विचार हैं जो इन चरित्रों के बारे में मृणाल या प्रमोद सोचते–विचारते हैं। उपन्यास को संपूर्णता में समेटने के लिए जैनेन्द्र ने वैचारिक गद्य की तरह चिंतनपरक बातें भी कही है। इन चिंतनपरक बातों से मृणाल की पीड़ा और उसका चरित्र हमारी समझ में आता है।

4.8 जीवन दृष्टि

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि मृणाल के जीवन के दुःखों का कारण 'यौन–शुचिता की धारणा और पतिव्रता की धारणा' है। लेखक इसका विस्तार से वर्णन करते हैं लेकिन उपन्यास का अंत होते–होते मृणाल स्वयं इस पतिव्रता की धारणा से सहमत हो जाती है। वह कहती है, ''मैं समाज को तोड़ना–फोड़ना नहीं चाहती हूँ। समाज टूटी कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे। या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे। इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ।'' इसलिए वह कहीं विद्रोह नहीं करती। यहाँ तक कि कहीं अपना विरोध

भी दर्ज नहीं करती। स्वयं जैनेंद्र मानते हैं कि ''जो शास्त्र में–नहीं– मिलता, वह ज्ञान आत्मव्यथा से मिलता है।'' इस आत्मव्यथा का मूर्तिमान रूप है मृणाल। एक प्रसंग में वह प्रमोद से कहती है, ''सहायता मुझे इसलिए चाहिए कि मेरा मन पक्का होता रहे कि कोई मुझे कुचले, तो भी मैं कुचली न जाऊँ और इतनी जीवित रहूँ कि उसके पास के बोझ को भी लेलूँ और सबके लिए क्षमा की प्रार्थना करूँ।''

बहुत बाद में प्रमोद को यह लगने लगता है और प्रमोद के माध्यम से जैनेन्द्र को भी लगता है कि ''कहीं क्यों, सब गड़बड़ ही गड़बड़ है सारी सृष्टि गलत है। समाज गलत है। जीवन ही हमारा गलत है सारा चक्कर यह ऊँटपटाँग है, इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है।'' उपन्यास में अपने इस चिंतन को जैनेंद्र आगे नहीं बढ़ाते और अपने चिंतन को सामंजस्य की तरफ मोड़ देते हैं।

4.9 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण.

'अच्छा, सच–सच बताती हूँ। मैं तेरे साथ रहना चाहती हूँ। रखेगा!'

यह कहकर उन्होंने ऐसा देखा कि मैं झेंप गया और तब उन्होंने मुझे खींचकर अपनी गोद में से ले लिया। फिर एकाएक मुझे अपने से चिपटाकर बोली– 'एक बात बता। तुझे बेंत खाना अच्छा लगता है!''

मैंने कहा–'बेंत!'

बोलीं– 'मैं एक बार तुझे बेंतों से पीटना चाहती हूँ। देखूँगी, तुझे कितना अच्छा लगता है।'

बुआ अजब तरीके से बातें कर रही थीं। मैंने कहा– 'ये कैसी बातें कह रही हो!'

बोली–'सच–सच कहती हूँ, प्रमोद। किसी और से नहीं कहा, तुझे कहती हूँ। बेंत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता। न यहाँ अच्छा लगता है, न वहाँ अच्छा लगता है।'

मैं आश्चर्य में रह गया। बोला–'क्या कहती हो बुआ ! वह मारते हैं!'

'हाँ मारते हैं।'

'बेंत से मारते हैं।'

संदर्भः

प्रस्तुत गद्यांश जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्याग–पत्र' से लिया गया है। प्रस्तुत प्रकरण में उपन्यास का कथावाचक प्रमोद और उसकी बुआ मृणाल के बीच आत्मीय बातचीत होती है। प्रमोद मृणाल के जीवन की पीड़ा के बारे में जानना चाहता है। और मृणाल उसे अपनी भावनाओं से अवगत कराती है। इस प्रक्रिया में वह अपने पति द्वारा की गई शारीरिक प्रताड़ना की जानकारी भी प्रमोद को देती है।

व्याख्या :

मृणाल प्रमोद से कहती है कि वह उसे सच ही बता रही है। ऐसा सत्य जो उसने अभी तक किसी को नहीं कहा। वह अत्यंत सहज तरीके से अपनी आंतरिक भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि वह प्रमोद के साथ ही रहना चाहती है। लेकिन

यह कहते समय वह जानती है कि ऐसा संभव नहीं है। तब भी ऐसी इच्छा तो उसके हृदय में हो ही सकती है। अतः थोड़ा परिहास करते हुए मृणाल प्रमोद से पूछती है कि क्या वह उसे अपने पास रखेगा। इसका एक अर्थ यह भी है कि क्या वह उसे अपने साथ रख पाएगा ! मृणाल जानती है कि ऐसा हो पाना संभव नहीं है। वह जीवन भर अपने भतीजे के साथ नहीं रह सकती। इसलिए केवल इतना ही कहकर अपनी बात आगे बढ़ा देती है। अपनी बात कहने के बाद मृणाल ने प्रमोद को ऐसी प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा कि प्रमोद झेंप गया। वह स्वाभाविक नहीं रह पाया। और तब मृणाल के हृदय में प्रमोद के प्रति स्वाभाविक स्नेह उत्पन्न होता है। इसी स्नेह की अभिव्यक्ति करते हुए मृणाल ने उसे अपनी गोद में ले लेती है। प्रमोद को अपने से चिपटाकर वह एक तटस्थ सा वक्तव्य देती है। वह प्रमोद से पूछती है कि क्या प्रमोद को बेंत खाना अच्छा लगता है। यहाँ स्पष्ट है कि बेंत खाना किसी को अच्छा नहीं लग सकता, फिर भी मृणाल प्रमोद से यह पूछती है। प्रमोद को इस प्रश्न का स्पष्ट आशय समझ में नहीं आता इसलिए वह बेंत शब्द बोलकर चुप हो जाता है। आगे अपनी बात को बढ़ाते हुए मृणाल कहती है कि वह एक बार प्रमोद को बेंत से पीटना चाहती है। बेंत से पिटने पर प्रमोद को क्या अच्छा लगेगा! मृणाल अपनी बात कहने के लिए, अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए इस वक्तव्य को तर्क के रूप में प्रयुक्त करती है। इस पर प्रमोद असमंजस की स्थिति में आ जाता है। मृणाल प्रमोद से कितना प्रेम करती है, यह बात प्रमोद भलीभाँति जानता है। मृणाल भी यह जानती है। मृणाल प्रमोद को बेंत से पीटेगी यह उन दोनों कल्पना से परे है। अतः प्रमोद कहता है कि उसकी बुआ कैसी अजीब बातें कर रही है। मृणाल अपनी रौ में बहती हुई कहती है कि उसने यह बात पहले किसी को नहीं कही है और न ही वह किसी को कहेगी। प्रमोद उसका अपना है इसीलिए वह प्रमोद से ऐसा कह रही है कि बेंत खाना मृणाल को अच्छा नहीं लगता। न मैके में और न ससुराल में। अर्थात् मृणाल को प्रमोद की माँ ने बेंत से पीटा है। यह बात मृणाल को बिल्कुल भी अच्छी नहीं लगी। और अब ससुराल में उसका पति उसे बेंत से पीटता है, यह बात भी उसे अच्छी नहीं लगती। इस तरह मृणाल एक भूमिका बाँधकर प्रमोद को बताती है कि प्रमोद की माँ ने भी उसे बेंत से पीटा था, जिसकी जानकारी प्रमोद को नहीं है और विवाह के पश्चात् ससुराल में उसका पति भी उसे बेंत से पीटता था, इसलिए वह ससुराल में खुश नहीं है।

विशेष :

1. इस गद्यांश में अपनी अनकही पीड़ा को अभिव्यक्त करती है और प्रमोद के साथ अपने आत्मीय संबंधों को अनुभूत भी कराती है।

2. इसमें मृणाल का संवेदनशील व्यक्तित्व भी प्रकट होता है जहाँ वह पीड़ा को पीड़ा के रूप में पहचानती है और अभिव्यक्त करती है। इस अभिव्यक्ति में कहीं भी भावावेग नहीं है। केवल तथ्यात्मक स्थिति का निरीक्षण है।

4.10 सारांश

'त्याग–पत्र' का प्रकाशन सन् 1937 ई. में हुआ। इसके प्रारम्भ में एक कल्पित कथा दी गई है, जिसके अनुसार सर. एम. दयाल ने इसका लेखन अंग्रेजी में किया। उसका हिन्दी उल्था यह उपन्यास है। उपन्यास का कथावाचक प्रमोद है, जो अपनी बुआ मृणाल के जीवन की कहानी कहता है। इस उपन्यास की संरचना आत्मकथा और

संस्मरण की शैली में की गई है। यह शैली प्रेमचंद की विवरण प्रधान शैली से अलग है। उपन्यास का प्रारम्भ मृणाल की मृत्यु की जानकारी से होता है। इसके बाद प्रमोद बचपन से कहानी का प्रारम्भ करता है। मृणाल के जीवन की पीड़ा के साथ जैनेन्द्र समाज में स्त्री की स्थिति, यौन–शुचिता की धारणा और पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर कई सवाल खड़े करते हैं। उपन्यास में तीन पात्र मृणाल को बेंत से पीटते हैं– स्कूल का शिक्षक, प्रमोद की माँ और मृणाल का पति। मृणाल और शीला के भाई के बीच शारीरिक संबंध कायम हो जाना इस उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। इस घटना से प्रमोद की माँ और उसका पति नाराज हो जाते हैं। प्रमोद की माँ उसका अनमेल विवाह कर देती है, पति उसको घर से निकाल देता है। तब वह कोयले वाले के साथ रहने लगती है। वह भी उसे छोड़कर चला जाता है। फिर मिशन अस्पताल और डॉक्टर के घर होती हुई समाज के तथा कथित 'निकृष्ट' तबके में पहुँच जाती है। उपन्यास का अंत होते–होते एक बार मृणाल प्रमोद से इन लोगों के लिए रूपये मांगती है, जो प्रमोद नहीं देता। फिर वह सत्रह वर्षों तक मृणाल से नहीं मिलता। और मृणाल की मृत्यु हो जाती है। इसके बाद जज पश्चाताप में त्याग पत्र दे देते हैं और उपन्यास समाप्त हो जाता है।

जैनेन्द्र कुमार का यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास की श्रेणी में आता है। अतः इसमें मृणाल की भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति पर जोर दिया गया है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक और संस्मरणात्मक शैली में लिखा गया है। पूरा उपन्यास संवादपरक है और श्रोता को संबोधित है। उपन्यास में मुख्य रूप से दो पात्र हैं, मृणाल और प्रमोद। इस उपन्यास में कोई विशिष्ट खल पात्र भी नहीं है। 'त्याग-पत्र' की भाषा में तटस्थता और वस्तुपरकता है।

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) √, (ख) ×, (ग) ×

2. क) 'त्याग-पत्र' उपन्यास डायरी और संस्मरण शैली में लिखा गया उपन्यास है। कथावाचक प्रमोद अपने निजी अनुभव और अपनी बुआ के जीवन के संस्मरण सुनाता है।

   ख) मृणाल राजनंदिनी के घर में नौकरानी थी तथा वहाँ बच्चों को ट्यूशन पढ़ाया करती थी। जब राजनंदिनी के परिवार को पता चला कि मृणाल होने वाले दामाद प्रमोद की बुआ है, तब राजनंदिनी के परिवार ने विवाह करने से इन्कार कर दिया।

   ग) अपने मैके में मृणाल को प्रमोद की माँ ने बेंत से मारा था तथा ससुराल में उसके पति ने मारा था।

3. (1) प्रमोद की माँ, (2) आर्यगृहिणी, (3) प्रमोद को।

इकाई 5 'नमक का दारोगा' का वाचन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्‌देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 प्रेमचंद का परिचय

5.3 कहानी का वाचन

5.4 'नमक का दारोगा' कहानी का कथा सार

5.5 संदर्भ सहित व्याख्या

5.6 सारांश

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्‌देश्य

यह इकाई प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'नमक का दारोगा' पर आधारित है। इस इकाई में आप कहानी का वाचन करेंगे। इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'नमक का दारोगा' कहानी का वाचन कर उसे समझ सकेंगे;
- कहानी के सार से परिचित हो सकेंगे; और
- कहानी के अंश की व्याख्या कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

प्रेमचंद हिंदी–उर्दू के विशिष्ट कहानीकार हैं। प्रारम्भ में उन्होंने उर्दू में लेखन किया। बाद में वे धीरे–धीरे हिंदी में भी रचना करने लगे। उनकी पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' सन् 1907 में प्रकाशित हुई। यह कहानी उनके पहले कहानी संग्रह 'सोज़े वतन' में शामिल की गई। इस संग्रह की सभी कहानियों में देश के लिए आत्म बलिदान की पुकार और भावुक देश–प्रेम दृष्टिगत होता है। 'प्रेमचंद' के नाम से उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' प्रकाशित हुई। आगे चलकर प्रेमचंद की कहानियों में उद्‌देश्यपरकता की प्रधानता दिखाई देती है। उद्‌देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने यथार्थ का उपयोग किया और उसी का वर्णन किया। प्रेमचंद की कहानी 'नमक का दारोगा' का वाचन आप इस इकाई में करेंगे। कहानी में परिहास, व्यंग्य, हंसी–ठिठोली करती हुई जीवंत भाषा है। कहानी का प्रारंभ ही व्यंग्य और युवा वर्ग की मानसिकता के अंकन से किया गया है। प्रेमचंद की विशेषता है कि वे कहानी का प्रारंभ भूमिका से करते हैं। जो आगे चलकर उस कहानी को विकसित करते हैं। कहानी के मूल कथ्य का संकेत भी देता है।

5.2 प्रेमचंद का परिचय

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, 1880 को बनारस के पास लमही नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम मुंशी अजायबलाल और माता का नाम आनंदी देवी था।

इनके पिता डाकखाने में मुंशी थे। शायद इसी कारण प्रेमचंद को भी मुंशी प्रेमचंद लिखने की परंपरा रही है। इनका बचपन का नाम धनपतराय श्रीवास्तव था। स्कूल में उनका यही नाम लिखवाया गया था। साहित्य लेखन के लिए उन्होंने नवाबराय नाम तय किया। इसी नाम से उन्होंने उर्दू में कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। आठ वर्ष की अवस्था में इनकी माता का देहान्त हो गया। बाद में इनके पिता ने दूसरा विवाह किया। इस विमाता से प्रेमचंद की अनबन रहती थी, जिसका उल्लेख उन्होंने किया है। जल्दी ही प्रेमचंद के पिता का देहांत हो गया, तब परिवार की सारी आर्थिक–सामाजिक जिम्मेदारी प्रेमचंद पर आ गई।

प्रेमचंद की आरंभिक शिक्षा मदरसे में हुई। उन्होंने प्रारंभिक लेखन भी उर्दू में ही किया। उनकी प्रारम्भिक उपलब्ध रचना, 'आलिवर क्रामवेल की जीवनी' (सन् 1903) माना जाता है। यह निबंध दयानारायण निगम के प्रसिद्ध पत्र 'जमाना' में प्रकाशित हुआ। उनका पहला उपन्यास 'हम खुर्मा और 'हम सबाब' (1906) माना जाता है। उनकी पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' (1907) मानी जाती है। उनका पहला कहानी संग्रह 'सोज़े–वतन' सन् 1909 में छपा। इस संग्रह में देशप्रेम की भावुक ललकार मिलती है। कहते हैं कि सरकार ने यह जानकारी प्राप्त कर ली थी कि धनपतराय श्रीवास्तव और नवाब राय एक ही व्यक्ति है। तब तत्कालीन जिलाधीश ने प्रेमचंद को बुलाकर डाँटा–फटकारा तथा भविष्य में ऐसी कहानियाँ न लिखने की हिदायत देकर इस संग्रह को जब्त कर लिया।

सरकारी नौकरी करते हुए अपने नाम से देशभक्ति का साहित्य लिखना प्रेमचंद के लिए अब संभव नहीं था, इसलिए पहले भी उन्होंने धनपतराय श्रीवास्तव के नाम से लेखन नहीं किया। लेखन के रूप में नवाबराय नाम चुना, परन्तु इसकी जानकारी सरकार को हो गई। तब नए नाम की खोज हुई। उन्होंने अपने मित्र दयानारायण निगम से चर्चा की और प्रेमचंद नाम से लेखन करने का निर्णय किया। प्रेमचंद के नाम से 'बड़े घर की बेटी' (1910) कहानी पहली बार छपी। इसके बाद सभी लोग प्रेमचंद को प्रेमचंद के नाम से ही जानने लगे।

प्रेमचंद को पढ़ने का शौक बचपन से ही था। उन्होंने स्वयं लिखा है, 'इस वक्त मेरी उम्र कोई तेरह साल की रही होगी। हिन्दी बिल्कुल न जानता था। उर्दू के उपन्यास पढ़ने का उन्माद था। मौलाना शरर, पं. रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा, मौलवी मोहम्मद अली हरदोई निवासी उस वक्त के सर्वप्रिय उपन्यासकार थे। इनकी रचनाएँ जहाँ मिल जाती थीं, स्कूल की याद भूल जाती थी और पुस्तक समाप्त करके ही दम लेता था। उस जमाने में रेनाल्ड के उपन्यासों की धूम थी। उर्दू में अनेक अनुवाद धड़ाधड़ निकल रहे थे और हाथों हाथ बिकते थे। मैं भी उनका आशिक था। स्व. हजरत रियाज ने, जो उर्दू के प्रसिद्ध कवि हैं और जिनका हाल में देहान्त हुआ है, रेनाल्ड की एक रचना का अनुवाद 'हरमसरा' के नाम से किया था। उसी जमाने में लखनऊ के साप्ताहिक 'अवध पंच' के सम्पादक स्व. मौलाना सज्जाद हुसैन ने, जो हास्य रस के अमर कलाकार थे, रेनाल्ड के दूसरे उपन्यास का अनुवाद 'धोखा या तिलस्मी कानून' के नाम से किया था। ये सभी पुस्तकें मैंने उस जमाने में पढ़ीं। और पं. रतननाथ सरशार से तो मुझे तृप्ति ही न होती थी। उनकी सारी रचनाएँ मैंने पढ़ डालीं। उन दिनों मेरे पिता गोरखपुर में रहते थे और मैं भी वहीं के मिशन स्कूल में आठवीं में पढ़ता था, जो तीसरा दरजा कहलाता था। रेती पर एक बुकसेलर बुद्धिलाल नाम का रहता था। मैं उसकी दूकान पर सारे दिन तो बैठ न सकता था, इसलिए मैं उसकी दूकान से अंग्रेजी पुस्तकों की कुंजियाँ और नोट्स लेकर अपने स्कूल के

लड़कों के हाथ बेचा करता था और इसकी एवज में उपन्यास दूकान से घर लाकर पढ़ता था । दो–तीन वर्षों में सैकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होंगे। जब उपन्यास का स्टॉक समाप्त हो गया, तो मैंने नवल किशोर प्रेस से निकले हुए पुराणों के उर्दू अनुवाद भी पढ़े और 'तिलस्म–ए–होशरुबा' के कई भाग भी पढ़े। इस वृहद तिलस्मी ग्रंथ के सत्रह भाग उस वक्त निकल चुके थे और एक–एक भाग बड़े सुपर रायल आकार के दो–दो हजार पृष्ठों से कम न होगा। और इन सत्रह भागों के उपरांत उसी पुस्तक के अलग–अलग प्रसंगों पर पचासों भाग छाप चुके थे। इनमें से भी मैंने कई पढ़े। जिसने इस बड़े ग्रंथ की रचना की, उसकी कल्पना शक्ति कितनी प्रबल होगी, इसका केवल अनुमान किया जा सकता है। कहते हैं, ये कथाएँ मौलाना फैजी ने अकबर के विनोदार्थ फारसी में लिखी थी। इसमें कितना सत्य है, कह नहीं सकता, लेकिन इतनी वृहद् कथा शायद ही संसार की किसी भाषा में हो। पूरी इंसाइक्लोपीडिया समझ लीजिए। एक आदमी तो अपने साठ वर्ष के जीवन में उनकी पूरी नकल भी करना चाहे, तो नहीं कर सकता। रचना तो दूसरी बात है।'' कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमचंद ने स्कूली शिक्षा के बाद स्वाध्याय के द्वारा अपने ज्ञान का विस्तार किया। उन्हें हिंदी, अंग्रेजी, फारसी और उर्दू का ज्ञान था। लेखन का प्रारम्भ उन्होंने उर्दू में किया। बाद में उन्होंने हिंदी में लिखना प्रारम्भ किया। हिंदी में लिखने के बावजूद वे उर्दू में भी लिखते रहे। इस तरह वे भारतीय भाषाओं के उन गिने–चुने लेखकों में से एक थे, जो हिंदी और उर्दू दोनों पर समान भाव से अधिकार रखते थे और जिन्हें दोनों भाषाओं के लेखक अपनी परंपरा में शामिल करते हैं।

प्रेमचंद ने बी.ए. तक की शिक्षा ग्रहण की।यह समय भारतीय इतिहास में महात्मा गाँधी के स्थापित होने के पहले का था। धीरे–धीरे गाँधी जी देश के सर्वमान्य नेता बने। गाँधी जी ने असहयोग आंदोलन का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया था। उस समय प्रेमचंद गोरखपुर में नौकरी कर रहे थे। 8 फरवरी, 1921 को गाँधी जी इलाहाबाद पहुँचे और एक जन सभा को संबोधित किया। स्वयं प्रेमचंद इस सभा में उपस्थित थे। महात्मा गाँधी ने जनता से सरकार के असहयोग की अपील की। इसका प्रेमचंद के मन पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। घर–परिवार में पत्नी से सलाह करके उन्होंने 15 फरवरी, 1921 को सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

नौकरी छोड़ने के बाद प्रेमचंद महावीर प्रसाद पोद्दार के साथ चले गए और चर्खे का प्रचार करने लगे। उन्होंने मारवाड़ी स्कूल, कानपुर, काशी विद्यापीठ आदि कई निजी संस्थानों में अध्यापकी की, परन्तु वे कहीं भी एक जगह स्थिर होकर नहीं रहे। इस बीच उन्होंने पत्रकारिता का कार्य भी किया। कुछ दिनों तक उन्होंने 'मर्यादा' का संपादन भी किया। स्थायी आमदनी के लिए प्रेमचंद प्रयासरत थे। इसी क्रम में उन्होंने जुलाई 1923 में बनारस में सरस्वती प्रेस की स्थापना की। इसी प्रेस से बाद में प्रेमचंद ने 'हंस' और 'जागरण' को प्रकाशित किया।

प्रेमचंद ने उस समय की प्रतिनिधि पत्रिका 'सरस्वती' में एक कहानी प्रकाशनार्थ भेजी– 'पंचों में ईश्वर'। सरस्वती के यशस्वी सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने शीर्षक को सुधार दिया और जून 1916 की 'सरस्वती' में 'पंच परमेश्वर' शीर्षक से यह कहानी प्रकाशित हुई। अब प्रेमचंद धीरे–धीरे हिंदी साहित्य में आने लगे। वे अपनी रचना पहले उर्दू में लिखते थे तथा बाद में स्वयं ही उसे हिंदी में लिखते थे। हिंदी में जब 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ तो हिंदी संसार में धूम मच गई। 'बाजार ए हुस्न' को इतनी तारीफ उर्दू में नहीं मिली थी। इसी क्रम में प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' उपन्यास की रचना पहले हिंदी में की और तब उसे उर्दू में प्रकाशित करवाया। बाद की सभी रचनाएँ इसी

तरह हिंदी और उर्दू में आगे–पीछे छपती रहीं और वे हिंदी–उर्दू दोनों भाषाओं के मान्य लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

5.3 कहानी का वाचन

जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल–प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ–बारह थे। पटवारीगीरी का सर्वसम्मानित पद छोड़–छोड़ कर लोग इस विभाग की बरकदाजी करते थे। इसके दरोगा पद के लिए वकीलों का भी जी ललचाता था। यह वह समय था, जब अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और श्रृंगार रस के काव्य पढ़कर फारसी दां लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरहकथा समाप्त करके मजनू और फरहाद के प्रेम–वृत्तांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्व की बातें समझते हुए रोजगार की खोज में निकले। उनके पिता एक अनुभवी पुरुष थे। समझाने लगे बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो, ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियाँ हैं, वह घास–फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं कगारे पर का वृक्ष हो रहा हूँ न मालूम कब गिर पडूँ। अब तुम्हीं घर के मालिक मुख्तार हो। नौकरी और ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मजार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते–घटते लुप्त हो जाता है, ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, उसी से उसकी बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान हो तुम्हें क्या समझाऊँ। इस विषय में विवेक को बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उसके उपरांत जो उचित समझो, करो। गरजवाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है। लेकिन बेगरज को दाँव पर पाना जरा कठिन है। इन बातों को निगाह में बाँध लो। यह मेरी जन्म भर की कमाई है। इस उपदेश के बाद पिता जी ने आशीर्वाद दिया। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथप्रदर्शक और आत्मावलम्बन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुन से चले थे, जाते ही जाते नमक विभाग के दारोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गये। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था। वृद्ध मुंशी जी को सुख–संवाद मिला तो फूले न समाये। महाजन कुछ नरम पड़े। कलवार की आशालता लहलहाई। पड़ोसियों के ह्रदय में शूल उठने लगे।

2

जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे। मुंशी वंशीधर को यहाँ आये अभी छह महीनों से अधिक न हुए थे; लेकिन इस थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी कार्यकुशलता और उत्तम आचार से अफसरों को मोहित कर लिया था। अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूर्व की ओर जमुना बहती थी, उस पर नावों का एक पुल बना हुआ था। दारोगा जी किवाड़ बंद किये मीठी नींद से सो रहे थे। अचानक आँख खुली तो नदी

के प्रवाह की जग गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनाई दिया। उठ बैठे। इतनी रात गये गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती हैं ? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वरदी पहनी, तमंचा जेब में रखा और बात की बात में घोड़ा बढ़ाये हुए पुल पर आ पहुँचे। गाड़ियों की एक लंबी कतार पुल के पार जाती देखी। डाँट कर पूछा, किसकी गाड़ियाँ हैं।

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कुछ कानाफूसी हुई तब आगे वाले ने कहा–पंडित अलोपीदीन की।

'कौन पंडित अलोपीदीन?

'दातागंज के।'

मुंशी वंशीधर चौंके। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपये का लेन–देन करते थे, इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लम्बा–चौड़ा था। बड़े चलते–पुरजे आदमी थे। अँगरेज अक्सर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते थे। बारहों मास सदाब्रत चलता था।

मुंशीजी ने पूछा गाड़ियाँ कहाँ जाएँगी ? उत्तर मिला, कानपुर। लेकिन इस प्रश्न पर कि इनमें क्या है, सन्नाटा छा गया। दारोगा साहब का संदेह और भी चढ़ा। कुछ देर तक उत्तर की बाट देख कर वह जोर से बोले, क्या गूँगे हो गये हो ? हम पूछते हैं इनमें क्या लदा है ? जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोड़े की एक गाड़ी से मिला कर बोरे को टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमक के ढेले थे।

3

पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार कुछ सोते, कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानों ने घबराये हुए आकर जगाया और बोले–महाराज! दारोगा ने गाड़ियाँ रोक दी हैं और घाट पर खड़े आपको बुलाते हैं।

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी जी पर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं नचाती है। लेटे ही लेटे गर्व से बोले, चलो हम आते हैं। यह कह कर पंडित जी ने बड़ी निश्चिंता से पान के बीड़े लगा कर खाये। फिर लिहाफ ओढ़े हुए दारोगा के पास आकर बोले, बाबू जी आशीर्वाद! कहिए, हमसे ऐसा कौन–सा अपराध हुआ कि गाड़ियाँ रोक दी गईं। हम ब्राह्मणों पर तो आपकी कृपा दृष्टि रहनी चाहिए।

वंशीधर रुखाई से बोले, सरकारी हुक्म।

पं. अलोपीदीन ने हँस कर कहा, ''हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घर का मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं ? आपने व्यर्थ का कष्ट उठाया। यह हो ही नहीं सकता कि इधर से जाएँ और इस बाट के देवता को भेंट न चढ़ावें। मैं तो आपकी सेवा में स्वयं ही आ रहा था।'' वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी वंशी का कुछ प्रभाव न पड़ा। ईमानदारी की नई उमंग थी। कड़क कर बोले, ''हम उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासत में हैं। आपका

कायदे के अनुसार चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातों की फुर्सत नहीं है। जमादार बदलूसिंह! तुम इन्हें हिरासत में ले चलो, मैं हुक्म देता हूँ।''

पं. अलोपीदीन स्तम्भित हो गये। गाड़ीवानों में हलचल मच गयी। पंडित जी के जीवन में कदाचित् यह पहला ही अवसर था कि पंडित को भी कठोर बातें सुननी पड़ी। बदलूसिंह आगे बढ़ा। किन्तु रोब के मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड़ सके। पंडित जी ने धर्म को धन का ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया कि यह अभी उद्दंड लड़का है। माया—मोह के जाल में अभी नहीं पड़ा। अल्हड़ है, झिझकता है। बहुत दीन—भाव से बोले, ''बाबू साहब, ऐसा न कीजिए, हम मिट जाएँगे। इज्जत धूल में मिल जाएगी। हमारा अपमान करने से आपके हाथ क्या आएगा। हम किसी तरह आपसे बाहर थोड़े ही हैं।''

वंशीधर ने कठोर स्वर में कहा, ''हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।''

अलोपीदीन ने जिस सहारे को चट्टान समझ रखा था, वह पैरों के नीचे खिसकता हुआ मालूम हुआ। स्वाभिमान और धन ऐश्वर्य को कड़ी चोट लगी। किन्तु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले, 'लाला जी, एक हजार के नोट बाबू साहब को भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।'

वंशीधर ने गरम होकर कहा, 'एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से हटा नहीं सकते।'

धर्म की इस बुद्धिहीन दृढ़ता और देव—दुर्लभ त्याग पर मन बहुत झुँझलाया। अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने उछल—उछल कर आक्रमण करने शुरू किये। एक से पाँच, पाँच से दस, दस से पंद्रह और पंद्रह से बीस हजार तक नौबत पहुँची, किन्तु धर्म अलौकिक वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भाँति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले; ''अब इससे अधिक मेरा साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।''

वंशीधर ने अपने जमादार को ललकारा। बदलूसिंह मन में दारोगा जी को गालियाँ देता हुआ पंडित अलोपीदीन की ओर बढ़ा। पंडित जी घबड़ा कर दो—तीन कदम पीछे हट गये। अत्यंत दीनता से बोले, ''बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूँ।''

''असंभव बात है।''

''तीस हजार पर।''

''किसी तरह भी संभव नहीं।''

''चालीस हजार नहीं, चालीस लाख पर भी असंभव है।''

''बदलूसिंह, इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।''

धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला। अलोपीदीन ने एक हृष्ट—पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियाँ लिए हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराशा और कातर दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद मूर्च्छित हो कर गिर पड़े।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो पंक्तियों में दीजिए :

   क) मुंशी वंशीधर की नियुक्ति किस पद पर हुई ?

   ....

   ....

   ख) रात के समय किसकी गाड़ियाँ निकल रही थीं और क्यों ?

   ....

   ....

   ग) पंडित अलोपीदीन क्यों निश्चिंत थे ?

   ....

   ....

   घ) मुंशी वंशीधर के चरित्र की दो विशेषताएँ बताइए।

   ....

   ....

4

दुनिया सोती थी पर दुनिया की जीभ जागती थी। सबेरे देखिए तो बालक वृद्ध सब के मुँह से यही बात सुनायी देती थी। जिसे देखिए वही पंडित जी के इस व्यवहार पर टीका–टिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारें हो रही थीं, मानों संसार से अब पापी का पाप कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनानेवाले सेठ और साहूकार यह सब के सब देवताओं की भाँति गर्दन चला रहे थे। जब दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभियुक्त हो कर कांस्टबेलों के साथ, हाथों में हथकड़ियाँ, हृदय में ग्लानि और क्षोभ भरे, लज्जा से गर्दने झुकाये अदालत की तरफ चले तो सारे शहर में हलचल मच गई। मेलों में कदाचित् आँखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़ के मारे छत और दीवार में कोई भेद न रहा।

किंतु अदालत में पहुँचने की देर थी। पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील–मुख्तार उनके आज्ञा पालक और अरदली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया ? बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आये। ऐसा मनुष्य जिसके असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आये। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गई। न्याय के मैदान में धर्म और धन युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र, गवाह थे, किंतु लोभ से डावाँडोल।

यहाँ तक कि मुँशी जी को न्याय भी अपनी ओर से कुछ खिंचा हुआ दीख पड़ता था। वह न्याय का दरबार था। परन्तु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था। किंतु पक्षपात और न्याय का क्या मेल ? जहाँ पक्षपात हो, वहाँ न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुकदमा शीघ्र ही समाप्त हो गया। डिप्टी मजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज में लिखा, पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिए गए प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक है। वह एक बड़े भारी आदमी हैं। यह बात कल्पना के बाहर है कि उन्होंने थोड़े माल के लिए ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर का अधिक दोष नहीं, लेकिन यह बड़े खेदकी बात है कि उनकी उद्दंडता और विचारहीनता के कारण एक भलेमानुस को कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काम में सजग और सचेत रहता है, किंतु नमक से मुहकमे को बढ़ी हुई नमकहलाली ने उसके विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। भविष्य में उसे होशियार रहना चाहिए।

वकीलों ने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पंडित अलोपीदीन मुस्कराते हुए बाहर निकले। स्वजन बांधवों ने रुपयों की लूट की। उदारता का सागर उमड़ पड़ा। उसकी लहरों ने अदालत की नींव तक हिला दी। जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओर से उनके ऊपर व्यंग्य वाणों की वर्षा होने लगी। चपरासियों ने झुक–झुक कर सलाम किये। किंतु इस समय एक–एक कटुवाक्य, एक–एक संकेत उनकी गर्वाग्नि को प्रज्ज्वलित कर रहा था। कदाचित उस मुकदमें में सफल होकर वह इस तरह अकड़ते हुए न चलते। आज उन्हें संसार का एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ। न्याय और विद्वत्त, लंबी–चौड़ी उपाधियाँ, बड़ी–बड़ी दाढ़ियाँ और ढीले चोंगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं हैं।

वंशीधर ने धन से बैर मोल लिया था, उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था। कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली का परवाना आ पहुँचा। कार्यपरायणता का दंड मिला। बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेद से व्यथित घर को चले। बूढ़े मुंशी जी तो पहले ही से कुड़–बुड़ा रहे थे कि चलते–चलते इस लड़के को समझाया था, लेकिन इसने एक न सुनी। सब मनमानी करता है। हम तो कलवार और कसाई के तगादे सहें, बुढ़ापे में भगत बन कर बैंठें और वहाँ बस वही सूखी तनख्वाह! हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन काम किया, दिल खोलकर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घर में चाहे अँधेरा हो, मस्जिद में अवश्य दीया जलाएँगे। खेद ऐसी समझ पर! पढ़ना–लिखना सब अकारथ गया। इसके थोड़े ही दिनों बाद, मुंशी वंशीधर इस दुरावस्था में घर पहुँचे और बूढ़े पिता जी ने समाचार सुना तो सिर पीट लिया। बोले, जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूँ। बहुत देर तक पछता–पछताकर हाथ मलते रहे। क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कहीं और यदि वंशीधर वहाँ से हट न जाते तो अवश्य ही वह क्रोध विकट रूप धारण करता। वृद्धा माता को भी दुख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर की यात्रा की कामनाएँ मिट्टी में मिल गईं। पत्नी ने तो कई दिन तक सीधे मुँह से बात भी नहीं की।

इस प्रकार एक सप्ताह बीत गया संध्या का समय था। बूढ़े मुंशी जी, बैठे राम–नाम की माला जप रहे थे। इसी समय उनके द्वार पर सजा हुआ रथ आकर रुका। हरे और गुलाबी परदे, पछाहियें बैलों की जोड़ी, उनकी गर्दनों में नीले धागे, सींगे पीतल से जड़ी हुई। कई नौकर लाठियाँ कंधों पर रखे साथ थे। मुंशी जी अगवानी को दौड़े। देखा तो पंडित अलोपीदीन हैं। झुक कर दंडवत की और लल्लो–चप्पों की बातें करने लगे, हमारा भाग्य उदय हुआ जो आपके चरण इस द्वार पर आये। आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन–सा मुँह दिखावें, मुँह में तो कालिख लगी हुई है किन्तु क्या

करें, लड़का अभागा कपूत है, नही तो आपसे क्यों मुँह छिपाना पड़ता ? ईश्वर निस्संतान चाहे रखें पर ऐसी संतान न दें।

अलोपीदीन ने कहा– ''नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए।''

मुंशी जी ने चकित होकर कहा– ''ऐसी संतान को और क्या कहूँ।''

अलोपीदीन से वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा– ''कुलतिलक और पुरुषों की कीर्ति उज्ज्वल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें ?''

पं. अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा–''दारोगा जी, इसे खुशामद न समझिए, खुशामद करने के लिए मुझे इतना कष्ट उठाने की जरूरत न थी। उस रात को आपने अपने अधिकार–बल से मुझे अपनी हिरासत में लिया था, किंतु आज मैं स्वेच्छा से आपकी हिरासत में आया हूँ। मैंने हजारों रईस और अमीर देखें, हजारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा, किन्तु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बना कर छोड़ दिया। मुझ आज्ञा दीजिए कि आपसे कुछ विनय करूँ।''

वंशीधर ने अलोपीदीन को आते देखा तो उठ कर सत्कार किया; किंतु स्वाभिमान सहित। समझ गये कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आये हैं। क्षमा–प्रार्थना की चेष्टा नहीं की। वरन् उन्हें अपने पिता की यह ठकुरसुहाती की बात असहृदय–सी प्रतीत हुई। पर पंडित जी की बातें सुनी तो मन की मैल मिट गयी। पंडित जी की ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा। सद्‌भाव झलक रहा था। गर्व ने लज्जा के सामने सिर झुका दिया। शर्माते हुए बोले–''यह आपकी उदारता है जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है उसे क्षमा कीजिए। मैं धर्म की बेड़ी में जकड़ा हुआ था, नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर–माथे पर।''

अलोपीदीन ने विनीत भाव से कहा–''नदी तट पर आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की थी, किंतु आज स्वीकार करनी पड़ेगी।''

वंशीधर बोले–''मैं किस योग्य हूँ, किंतु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है उसमें त्रुटि न होगी।''

अलोपीदीन ने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधर के सामने रखकर बोले–''इस पद को स्वीकार कीजिए और अपने हस्ताक्षर कर दीजिए। मैं ब्राह्मण हूँ, जब तक यह सवाल पूरा न कीजिएगा द्वार से न हटूँगा।''

मुंशी वंशीधर ने उस कागज को पढ़ा तो कृतज्ञता से आँखों में आँसू भर आए। पंडित अलोपीदीन ने उनको अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियत किया था। छह हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़ा, रहने को बंगला, नौकर–चाकर मुफ्त। कम्पित स्वर में बोले–''पंडित जी, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि मैं आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूँ। किंतु ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूँ।'

अलोपीदीन हँस कर बोले–'मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही जरूरत है।'

वंशीधर ने गंभीर भाव से कहा–''यों मैं आपका दास हूँ। आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बता है। किंतु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि,

न वह स्वभाव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है। ऐसे महान् कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्य जरूरत है।''

अलोपीदीन ने कलमदान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ में देकर बोले, ''न मुझे विद्वता की चाह है न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्य–कुशलता की। इन गुणों के महत्व का परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है, जिसके सामने योग्यता और विद्वता की चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिए, अधिक सोच–विचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारे वाला, बेमुरौवत, उद्दंड, कठोर परन्तु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाये रखे।''

वंशीधर की आँखें डबडबा आयी। हृदय के संकुचित पात्र में इतना एहसान न समा सका। एक बार फिर पंडित जी की ओर भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा और काँपते हुए हाथ से मैनेजरी पर हस्ताक्षर कर दिये।

अलोपीदीन ने प्रफुल्लित होकर उन्हें गले लगा लिया।

5.4 'नमक का दारोगा' कहानी का कथासार

'नमक का दारोगा' प्रेमचंद की संक्षिप्त और संगठित कहानी है। इस कहानी का नायक मुंशी बंशीधर है। वह अपनी शिक्षा खत्म करके नौकरी के लिए आवेदन करता है और उसे नमक का दारोगा के रूप में नियुक्ति मिल जाती है। देश में नमक का नया विभाग खुला था तथा उसमें नौकरी करने के लिए बहुत लोग लालायित रहते थे। इसका कारण यह था कि इस नौकरी में ऊपर की कमाई (रिश्वत) की अपार संभावनाएँ थीं। उसके पिता ने बंशीधर को रिश्वत के गुर सिखाकर विदा कियां वह आज्ञाकारी पुत्र के रूप में चुपचाप सारी बातें सुनता है। वंशीधर ईमानदारी और मेहनत से कार्य करते हैं। अभी उन्हें नौकरी करते हुए छः महीने ही हुए हैं कि एक रात में कुछ गाड़ियाँ माल लेकर जा रही होती है। वंशीधर को पता चलता है कि इस इलाके की ये गाड़िया प्रतिष्ठित जमींदार पं. अलोपीदीन की है और इसमें नमक जा रहा है। सरकार ने नमक के व्यापार पर प्रतिबंध लगा रखा है। मुंशी वंशीधर पं. अलोपीदीन को गिरफ्तार कर लेते हें। हालाँकि पंडित जी दारोगा को चालीस हजार रुपये की रिश्वत देने की पेशकश करते हैं, जिसे मुंशी वंशीधर अस्वीकार कर देते हैं।

दूसरे दिन कचहरी में पं. अलोपीदीन की पेशी होती है। उन्हें वे बाइज्जत बरी हो जाते हे। मजिस्ट्रेट मुंशी वंशीधर को यह सलाह देती है कि जिम्मेदारी से नौकरी करें। सप्ताह भर बाद वंशीधर की नौकरी छूट जाती है और वे पुनः अपने घर लौट आते हैं। घर वाले बहुत निराश और दुःखी होते हैं। इसके कुछ दिनों बाद पं. अलोपीदीन वंशीधर के घर आते हैं और उन्हें अपनी संपूर्ण जायदाद का स्थायी मैनेजर बनाने की प्रस्ताव रखते हैं। वे उन्हें छः हजार रुपये वार्षिक वेतन, नौकर–चाकर, गाड़ी–घोड़ा सब देने का आश्वासन देते हें मुंशी वंशीधर इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं। यहीं कहानी समाप्त हो जाती है।

5.5 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण–1.

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी जी पर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं नचाती है। लेटे ही लेटे गर्व से बोले, चलो हम आते हैं। यह कह कर पंडित जी ने बड़ी निश्चिंतता से पान के बीड़े लगा कर खाये।

संदर्भ :

प्रस्तुत गद्यांश प्रेमचंद की महत्वपूर्ण कहानी 'नमक का दारोगा' से लिया गया है। कहानी में मुंशी वंशीधर नमक के दारोगा के पद पर नियुक्त होते हैं। वे अत्यंत ईमानदार और निडर हैं। जाड़े के दिनों में एक दिन रात के समय नमक के दफ्तर के आसपास गाड़ियों की गड़गड़ाहट दारोगा जी को सुनाई देती है। वे पूछताछ करते हैं तो पता चलता है कि दातागंज के प्रतिष्ठित जमींदार पंडित अलोपीदीन की गाड़ियाँ जा रही थीं और उनमें नमक के ढेले भरे थे। नमक के व्यापार पर सरकार द्वारा रोक लगाई थी अतः मुंशी वंशीधर इस गैरकानूनी व्यापार को रोक देते हैं। गाड़ीवान घबराए हुए पंडित अलोपीदीन के पास आकर व्यथा सुनाते हैं।

व्याख्या :

पंडित अलोपीदीन धनी व्यक्ति हैं और उन्हें विश्वास था कि धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है। उनका यह विश्वास अखंड विश्वास था अर्थात् पहले कभी खंडित नहीं हुआ था। उनके इस विश्वास ने उन्हें अत्यधिक आत्मविश्वासी और अहंकार से भरपूर बना दिया था। उनका मानना था कि वे धन से दारोगा को भी खरीद लेंगे, उनकी मान्यता है कि चाहे न्याय हो या नैतिकता सभी को धन से पराजित कर झुकाया जा सकता है। लक्ष्मी की कृपा से, रिश्वत के माध्यम से गैरकानूनी कारोबार इसी भाँति चलता रहेगा। पं. अलोपीदीन के समक्ष ईमानदारी और नैतिकता का कोई मूल्य नहीं। उन्हें अपने धन पर गर्व है और वे धन के मद में निर्बाध रूप से भ्रष्टाचार को चलाए रखते हैं। उनकी इस मानसिकता का उस समय की न्याय व्यवस्था और सरकारी तंत्र समर्थन करता दिखाई देता है। धन और प्रतिष्ठा के मद में चूर गैर कानूनी कार्यों के प्रति निश्चिंत अलोपीदीन की मानसिकता का वर्णन करते हुए लेखक इस पूरी प्रक्रिया के प्रति उनके रवैये को दिखाते हुए स्पष्ट करता है कि वे गैरकानूनी कार्य करते हुए पकड़े जाने पर भी विचलित नहीं हुए। बिना डरे, निश्‍िंचत होकर पान के बीड़े लगा कर खाते हैं। उनका यह निश्‍िंचत और बेबाक रवैया उस युग के भ्रष्टाचारी तंत्र और धनी व्यक्ति के सामाजिक प्रभाव का द्योतक है।

प्रेमचंद ने पंडित अलोपीदीन के इस पूरी व्यवस्था के प्रति लापरवाह मनोभाव को दिखाकर यह बताने का प्रयास भी किया है कि धनी व्यक्ति अपने धन और प्रभाव से पूरे तंत्र को अपने समक्ष झुका सकता है और ईमानदार को उस व्यवस्था से बाहर भी कर सकता है।

उद्धरण–2

मुंशी वंशीधर ने उस कागज को पढ़ा तो कृतज्ञता से आँखों में आँसू भर आये। पंडित अलोपीदीन ने उनको अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियत किया था। छह हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़ा, रहने को बँगला, नौकर–चाकर मुफ्त। कम्पित स्वर में बोले–पंडित जी, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूँ। किंतु ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूँ।

अलोपीदीन हँस कर बोले–मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही जरूरत है।

संदर्भ :

प्रस्तुत अंश प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'नमक का दारोगा' से लिया गया है। इस कहानी में ईमानदार नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर जाने माने और धनी पंडित अलोपीदीन को नमक का गैरकानूनी कारोबार करने के जुर्म में बंदी बना लेते हैं। पंडित अलोपीदीन पर मुकदमा चलता है। उस समय को सरकारी तंत्र उनकी सहायता करता है और वे सम्मान सहित बरी हो जाते हैं। इस पूरी न्याय व्यवस्था की गलत प्रक्रिया से आहत मुंशी वंशीधर अपने पद से इस्तीफा दे देते हैं। परन्तु पंडित अलोपीदीन को ईमानदार दारोगा की परख है। मुंशी वंशीधर के रूप में एक ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के दर्शन होते हैं और वे मुंशी वंशीधर को अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियुक्त करने हेतु स्टाम्प पत्र लेकर उनके घर जाते हैं।

व्याख्या : मुंशी वंशीधर ने जब उस पत्र को देखा जिसमें पंडित अलोपीदीन द्वारा अपनी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियुक्त किया गया था तो उनके नेत्रों में पंडित जी के प्रति आदर भाव और कृतज्ञता के अश्रु छलक उठते हैं क्योंकि जिस तरह से उन्होंने पंडित अलोपीदीन को गिरफ्तार कर उनका सरेआम अपमान किया था, उस स्थिति में उन्हें पंडित अलोपीदीन से इतने सम्मान की अपेक्षा नहीं थी। पंडित अलोपीदीन ने उन्हें अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियुक्त करने के साथ–साथ अनेक सुविधाएँ और वार्षिक वेतन के रूप में एक बड़ी राशि प्रस्तुत की थी। मुंशी वंशीधर अलोपीदीन के आत्मीय व्यवहार से मन ही मन ग्लानि से भर उठते हैं। और विनम्र शब्दों में पंडित जी की उदारता की प्रशंसा करते हुए पद स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं। मुंशी वंशीधर की यह हिचकिचाहट उनके पंडित अलोपीदीन के प्रति किए गए पूर्व व्यवहार की ग्लानि से उत्पन्न हुई है परन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं कि उनके उसी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठ व्यवहार के प्रति पंडित अलोपीदीन उनके प्रति नतमस्तक है। वंशीधर को स्थायी मैनेजर नियत कर अपनी जायदाद की सुरक्षा पर उन्हें पूर्ण विश्वास है। वंशीधर के विनम्र स्वर में यह कहने पर कि वे ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं है, अलोपीदीन लक्ष्यार्थ में उन्हें कहते हैं कि ऐसे अयोग्य व्यक्ति की ही उन्हें आवश्यकता है। अर्थात् यदि ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और निडरता ही अयोग्यता की पहचान है तो मुंशी वंशीधर सर्वोत्तम व्यक्ति है।

वार्तालाप में प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि ईमानदार और निडर व्यक्ति की पहचान जौहरी कर ही लेता है और उसे उसका प्रतिफल (अच्छा) अवश्य प्राप्त होता है।

उद्धरण—3

पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील–मुख्तार उनके आज्ञा पालक और अरदली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया ? बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आये। ऐसा मनुष्य जिसके असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आये। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गई। न्याय के मैदान में धर्म और धन युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र, गवाह थे, किंतु लोभ से डावाँडोल।

नोट : इस उद्धरण की व्याख्या ऊपर दिए गए व्याख्यांशों के संदर्भों और व्याख्या के आधार पर स्वयं करने का प्रयास कीजिए।

बोध प्रश्न

2. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति उचित विकल्प द्वारा कीजिए :

   क) पंडित अलोपीदीन .... व्यक्ति थे। (अहंकारी, ईमानदार)

   ख) मुंशी वंशीधर के पिता उन्हें .... मानते थे। (सपूत, कपूत)

   ग) पंडित अलोपीदीन ने वंशीधर की जायदाद का .... नियुक्त किया। (मालिक, स्थायी मैनेजर)

3. मुंशी वंशीधर के चरित्र की विशेषताएँ लिखिए। (लगभग 6 पंक्तियों में)

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

4. वकीलों का फैसला सुनकर मुंशी वंशीधर को क्या अनुभव हुआ ?

   ....

   ....

   ....

   ....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

5.6 सारांश

इस इकाई में आपने प्रेमचंद की महत्वपूर्ण तथा प्रासंगिक कहानी 'नमक का दारोगा' का वाचन किया तथा उसका कथासार जाना। 'सोज़े वतन' प्रकाशन के बाद 1914 से पूर्व इस कहानी का प्रकाशन हुआ। पहले यह कहानी उर्दू में प्रकाशित हुई, फिर हिंदी में, कहानी में प्रमुख पात्र मुंशी वंशीधर और पं. अलोपीदीन हैं। प्रेमचंद ने अपने युग की एक महत्वपूर्ण समस्या 'ईश्वर प्रदत्त वस्तु (नमक) के व्यवहार के निषेध' को इस कहानी का विषय बनाया है। परन्तु आगे बढ़ते हुए यह कहानी उस युग की पूरी व्यवस्था, न्याय व्यवस्था और समाज पर चोट करती है। अंत में कहानी ईमानदारी की विजय का निदर्शन करती है। इस ईमानदारी के विजय में पंडित अलोपीदीन या मुशी वंशीधर में से किसका कितना लाभ होता है यह आपने कहानी का वाचन कर समझ लिया होगा। अगली इकाई में इस कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाएगा।

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क, ख, ग, घ के लिए कहानी का वाचन करें और स्वयं उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास करें।
2. (क) अहंकारी, (ख) कपूत, (ग) स्थायी मैनेजर

प्रश्न 3. एवं 4 के उत्तरों के लिए कहानी का वाचन ध्यान से करें।

इकाई 6 'नमक का दारोगा' की कथावस्तु और विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 विषयवस्तु तथा कथानक

6.3 चरित्र चित्रण

 6.3.1 सहयोगी पात्र

 6.3.2 प्रमुख पात्र

6.4 कहानी का परिवेश

6.5 संरचना–शिल्प

 6.5.1 शैली

 6.5.2 भाषा

6.6 मूल्यांकन

6.7 सारांश

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप :

- 'नमक का दरोगा' कहानी की अंतर्वस्तु को समझ सकेंगे;
- 'नमक के दरोगा' के पात्रों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- 'नमक का दरोगा' कहानी के परिवेश समझ सकेंगे; और
- 'नमक का दरोगा' कहानी की भाषा–शैली से परिचित हो सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

'नमक का दारोगा' कहानी का प्रकाशन 'सोज़ेवतन' के जब्त होने के बाद हुआ था। इसे प्रेमचंद ने सन् 1914 में पहले उर्दू में लिखा था। बाद में यह कहानी हिंदी में प्रकाशित हुई। सोज़ेवतन के बाद प्रेमचंद ने यथार्थ जीवन की ऐसी कहानियाँ लिखी, जिनमें अंग्रेजी राज का विरोध और भावुक देश प्रेम की भावनाएँ नहीं होती थीं। वे तथ्यों का वर्णन तटस्थ भाव से करने लगे थे। कहानियों में व्यवस्था की कमियाँ तो अंकित थीं, परन्तु सत्ता को चुनौती नहीं थी। असहयोग आंदोलन से पूर्व प्रेमचंद की यही मानसिकता थी। इस रचनात्मक मानसिकता को हम 'नमक का दारोगा' में देख सकते हैं। पिछली इकाई में आपने 'नमक का दारोगा' कहानी का वाचन किया है। इस इकाई में हम कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाएगा।

6.2 विषयवस्तु तथा कथानक

अब हम कहानी का बारीकी से विश्लेषण करते हैं। कहानी के आरम्भिक वाक्य आगे घटित होने वाली घटनाओं का आधार प्रस्तुत करते हैं। कहानी में घटित होने वाली घटनाओं को समझने के लिए इन वाक्यों का अर्थ समझ लेना उपयोगी होगा। इन वाक्यों में लेखक की समझ सूत्रबद्ध रूप में सामने आती है। कहानी का पहला वाक्य तथ्यात्मक जानकारी के रूप में है कि 'देश में नमक का नया विभाग खुला'। इससे यह पता चलता है कि प्रेमचंद अपने समय की कहानी कहने वाले हैं। जब नमक का अलग विभाग बनाया गया और विभाग बना तो नमक का दारोगा भी बना होगा। आगे प्रेमचंद इस नमक के विभाग के बारे में कुछ नहीं कहते। संपूर्ण कहानी नमक के दारोगा के संदर्भ में है। अब विभाग बना है तो विभाग का कुछ काम भी तय किया गया है। अगले वाक्य में प्रेमचंद टिप्पणी करते हैं–'ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यवहार करने लगे।' अर्थात् मूल समस्या है–ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार पर प्रतिबंध। सरकार के इस एक निर्णय से यह पूरी कहानी बन गई। इस आधार वक्तव्य से कहानी खड़ी होती है। सरकार ने नमक के व्यापार पर रोक लगा दी, तभी तो पंडित अलोपीदीन 'चोरी–छिपे' नमक ले जाने लगे। लोग नमक खरीद रहे हैं, तभी तो अलोपीदीन भी ले जा रहे हैं और उसका व्यापार कर रहे हैं। वे चोरी –छिपे नमक ले जा रहे हैं, तभी तो मुंशी वंशीधर उन्हें गिरफ्तार कर रहे हैं और तभी तो वे मुंशी वंशीधर को भारी रिश्वत देने की पेशकश कर रहे हैं। यदि यह कानून न होता तो पं. अलोपीदीन क्यों पकड़े जाते, क्यों उन्हें न्यायालय में जाना पड़ता। इस तरह कहानी की एक घटना कारण है, दूसरी हालाँकि परिणाम है, परन्तु वह अगली घटना का कारण भी है। इस तरह पूरी कहानी कारण, परिणाम की तार्किक श्रृंखला में चलती है।

कहानी के प्रारम्भ होने के बाद प्रेमचंद इस आधार वक्तव्य का कहीं जिक्र नहीं करते। यदि इस वक्तव्य को सही मान लिया जाए तो पं. अलोपीदीन की तो कोई गलती ही नहीं है। गलती यदि नहीं है तो उन्हें सजा देना न्याय संगत नहीं हो सकता गलती तो सरकार की है, जिसने ऐसा कानून बनाया। इस तर्क से मुंशी वंशीधर ने जो भी किया, वह सब नासमझी में किया और पं. अलोपीदीन जैसे चलते–पुरजे आदमी को गिरफ्तार कर लिया।

कहानी का पहला भाग कहानी का आधार स्पष्ट करता है। मुख्य कहानी तो उसके बाद से शुरू होती है। ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध होने से समाज में जो परिवर्तन हुआ है, प्रेमचंद उसकी कहानी कहते हैं। इस एक आदेश से जीवन में छल–प्रपंच का सूत्रपात होता है। इस तरह प्रेमचंद कहना चाहते हैं कि चारित्रिक नैतिक पतन के मूल में सरकार की नीतियाँ हैं। इस तथ्य को समझाने के लिए प्रेमचंद कहानी के द्वारा जन–शिक्षण का कार्य करते हैं। वे अपनी रचनाओं के द्वारा जन शिक्षण के कार्य को करते रहना चाहते हैं। सरकारी कानून के कारण उत्पन्न इस छल–प्रपंच के कई रूप हैं। कोई घूस से काम निकालता था और कोई चालाकी से। अर्थात् घूस–चालाकी का उदय 'ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने के निषेध' से होता है। जब कानून में कमियाँ हो, गलत हो, तब कानून को लागू करने वाले अधिकारियों की पौबारह हो जाती है। वे इस कानून की अलग तरह की व्याख्या करते हैं और मालामाल हो जाते हैं।

प्रेमचंद स्पष्ट करते हैं कि नमक के इस कानून में घूसखोरी का लालच इतना अधिक है कि लोग बाग 'पटवार गिरी' के पद को छोड़कर नमक विभाग में आने का प्रयास करने लगे। यहाँ तक कि वकीलों का भी जी ललचाने लगता है।

इसके बाद प्रेमचंद अपने समय की चेतना पर टिप्पणी करते हैं। वे बताते हैं कि यह वह समय था, जब लोग अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत को एक ही समझते थे। स्पष्ट है कि प्रेमचंद भाषा को धर्म से जोड़ने की धारणा से सहमत नहीं थे। इस पक्ष पर प्रेमचंद ने यहाँ केवल इतना ही कहा। इससे अधिक लिखने में कहानी के भटकने की संभावना थी। उस युग के लोग मानते थे कि अंग्रेजी पढ़–लिखकर व्यक्ति आधुनिक हो जाता है। और आधुनिक का अर्थ ईसाई हुआ करता था। उस दौर में शिक्षा जगत और नौकरी की दुनिया में फारसी का बाहुल्य था। फारसी में भी लोग वैज्ञानिक जानकारियाँ नहीं पढ़ते थे। इस पर प्रेमचंद ने परिहास किया और विसंगति की ओर इशारा करते हुए लिखा, 'प्रेम की कथा और श्रृंगार रस के काव्य पढ़कर फारसी दाँ लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे।'

अब प्रेमचंद नायक की शिक्षा पर टिप्पणी करते हैं कि उसने जुलेखा की विरह कथा पढ़ रखी थी। मजनूँ और फरहाद के प्रेम वृत्तांत को भी जान लिया था। यहाँ प्रेमचंद तुलना करते हुए नामक की मानसिकता स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि नायक को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से महत्वपूर्ण बातें इन प्रेम कथाओं में प्रतीत होती थीं। ऐसा कल्पना जीवी नायक नौकरी की तलाश में निकलता है। अंततः इस कल्पना जीवी नामक वंशीधर को नौकरी मिल भी जाती है। मुंशी वंशीधर अनुभवहीन नायक हैं। ऐसे अनुभवहीन लोगों को घर के बड़े–बूढ़े तथा निकटस्थ लोग नौकरी के गुर सिखाते हैं। कहानी में यह कार्य वंशीधर के पिता करते हैं। कहानी में वंशीधर के पिता बहु उद्धृत वक्तव्य देते हैं, ''मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते–घटते लुप्त हो जाता है। इसलिए निगाह हमेशा ऊपर की कमाई पर रखनी चाहिए। यह तो झरना है, जो कभी सूखता नहीं। गरजमंद से चाहे जितना वसूल कर लो।'' इस मूल मंत्र को समझाकर पिता आगे कहते हैं कि 'वैसे तुम विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊँ ? स्वयं तरीके खोज लेना। घर की बदहाली देख ही रहे हो।' पिता द्वारा दिए गए इस रिश्वती ज्ञान के साथ वंशीधर नौकरी की दुनिया के लिए निकल पड़ते हैं। प्रेमचंद यह टिप्पणी करना नहीं भूलते कि वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। उन्होंने ध्यान से सब बातें सुनीं। कितनी बातें मानी या नहीं मानी, उन बातों के अनुसार व्यवहार किया या नहीं किया, इस पर प्रेमचंद कोई टिप्पणी नहीं करते। रोमानी संसार से नौकरी की दुनिया में आकर मुंशी वंशीधर ने तय किया कि अब 'धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथ–प्रदर्शक और आत्मावलम्बन ही अपना सहायक' है। फिर आराम से उन्हें नमक विभाग में दारोगा की नौकरी मिल गयी। वेतन अच्छा था। यह लिखकर प्रेमचंद ने टिप्पणी की कि 'ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था।' इस समाचार को सुनकर पिता खुश हो गए। पैसे माँगने वाले महाजन कुछ नरम पड़ गये और 'पड़ोसियों के ह्रदय में शूल उठने लगे।' इस वातावरण के साथ कहानी का पहला भाग समाप्त हो जाता है।

दूसरे भाग में मूल कहानी अपना रंग दिखाने लगती है। कहानी छः महीने के बाद प्रारम्भ होती है। इस बीच मुंशी वंशीधर की छवि एक कार्य कुशल कर्मचारी

की बन गई थी। इस कारण उसके अफसर भी उससे प्रसन्न रहने लगे थे। नमक के दफ्तर के पूर्व की तरफ यमुना नदी बहती थी। यहाँ पर नावों का पुल बना हुआ था। उस काल में पुल लकड़ी के ही बने हुए होते थे। कंक्रीट के पुल भारत में बहुत बाद में बनने लगे थे। रात के समय का वातावरण है। तस्करी के लिए यही समय सबसे अच्छा माना जाता है। आज के पाठक को यह आश्चर्यजनक लग सकता है कि क्या नमक की भी तस्करी होती थी ? वास्तविकता तो यह है कि अंग्रेजी शासन के नमक कानून के कारण बड़े पैमाने पर नमक की तस्करी होती थी। कहानी में यह तस्करी बैलगाड़ियों से हो रही थी। लकड़ी के पुल पर जब बैल गाड़ियाँ चलती हैं तो खड़–खड़ाहट और हल्ला–गुल्ला होता है। इस शोर–शराबे के फलस्वरूप दारोगा वंशीधर की नींद खुलती हैं और वे घोड़े पर सवार होकर पुल के पास पहुँच जाते हैं।

यहाँ से कहानी में तनाव प्रारम्भ होता है। इसे इस रूप में भी कहा जा सकता है कि यहाँ से कहानी शुरू होती है। यहाँ पाठक वंशीधर का एक नया रूप देखते हैं, जिसका फारसी प्रेम–कहानियाँ पढ़ने वाले किशोर वय के भावुक व्यक्ति से अलग चरित्र है। यदि कहानी का वंशीधर पिता की आज्ञा का सचमुच पालन करता, तब क्या होता! तब यह रिश्वतखोर वंशीधर प्रेमचंद की कहानी का नायक नहीं होता। यह ईमानदार और निष्ठुर नया वंशीधर कैसे बना, कहाँ से आ गया, इसकी प्रक्रिया प्रेमचंद ने स्पष्ट नहीं की। लेखक बिना कुछ टिप्पणी किए यह जताता है कि पाठक भी मान ले कि वंशीधर ऐसा ही है। अब पुल पर जब मुंशी वंशीधर आते हैं और पूछताछ करते हैं, तो पता चलता है कि नमक की ये गाड़ियाँ पंडित अलोपीदीन की हैं और कानपुर जा रही हैं। मुंशी वंशीधर यह तो जानता ही है कि पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार है। अब सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति यदि धड़ल्ले से गैर कानूनी काम करता हुआ पाया जाए, तो आश्चर्य तो होता ही है, मुंशी वंशीधर को भी हुआ। प्रेमचंद ने अलोपीदीन की प्रतिष्ठा का आधार स्पष्ट किया है। जिनमें से एक तो यह कि उनका लंबा–चौड़ा व्यापार था। अर्थात् वे आर्थिक रूप से समर्थ थे। दूसरे वे बड़े चलते–पुरजे आदमी थे अर्थात् समाज में और प्रशासन में उनकी गहरी पैठ थी। तीसरे, अंग्रेज अफसर जब इस इलाके में आते तो इनके मेहमान होते थे अर्थात् वे राजनीतिक रूप से समर्थ थे और वे खुले दिल से अफ़सरों की आवभगत करते थे। सबसे बड़ी बात, उनके घर पर सदाव्रत चलता रहता था। इससे उनकी छवि सामाजिक–धार्मिक व्यक्ति की बनी हुई थी। ऐसा व्यक्ति तस्करी करते हुए पकड़ा गया था।

प्रेमचंद जब कहानी लिखते हैं, तब सिर्फ प्रमुख पात्र की ही कहानी नहीं कहते अपितु, आसपास के जीवन और समाज की कहानी भी कहते चलते हैं। उनका कहने का तरीका बेशक यह होता है कि यह तो अत्यंत सामान्य बात है, जिसे पाठक जानता है। इसके बावजूद वह बात विशेष होती है और तब ज्ञात होता है कि पंडित अलोपीदीन का परिचय कई बातों को समेटे हुए हैं और कहानी में आगे चलकर घटनाक्रम में इन्हीं के कारण परिवर्तन होना भी संभव है।

कहानी के तीसरे भाग में ये दोनों पात्र एक–दूसरे से टकराते हैं। इस टकराहट से पहले प्रेमचंद पंडित अलोपीदीन के वैभव से पाठकों को परिचित कराते चलते हैं। अब तक उनका परिचय वंशीधर की जानकारी के आधार पर दिया गया था। अब स्वयं लेखक वर्णन करता है। नमक की इन गाड़ियों के साथ–साथ एक

अलग सजीली गाड़ी में पंडित जी चल रहे थे। उनको पूरा विश्वास था कि नमक की तस्करी में कोई बाधा आने वाली नहीं है। अर्थात् यह काम पहली बार नहीं कर रहे हैं। यह उनका नियमित व्यापार है। अतः रास्ता और रास्ते के बाधाओं से तो परिचित थे ही, उन उपायों से भी भली–भाँति लैस थे, जिनसे इन बाधाओं को दूर किया जा सकता है। प्रेमचंद सबसे पहले उनकी मानसिकता को स्पष्ट करते हैं। उनके बारे में प्रेमचंद पहली बात यही बताते हैं कि उनको लक्ष्मी पर अखंड विश्वास था। अखंड का एक अर्थ यह भी हुआ कि उनका यह विश्वास कभी खंडित नहीं हुआ था और किसी ने उनकी शक्ति को चुनौती नहीं दी थी। वे तो मानते थे कि न्याय और नीति सब लक्ष्मी के खिलौने हैं। वे तो यहाँ तक मानते थे कि स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही शासन चलता है। यहाँ पौराणिक संदर्भ यह है कि लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नी हैं।

हालाँकि पंडित अलोपीदीन का आत्मविश्वास दृढ़ था, परन्तु उनके व्यवहार में अक्खड़ता नहीं थी। वे मुंशी वंशीधर से बहुत आदरपूर्वक बातचीत करते हैं और निवेदन करते हैं कि उनके ऐसा कौन–सा अपराध हो गया, जो गाड़ियाँ रोक दी गयीं। अब प्रेमचंद के पंडित जी अपने ब्राह्मणत्व को आगे करके तर्क करते हैं कि इस नाते से उन पर तो मुंशी जी की कृपा रहनी चाहिए। जब मुंशी वंशीधर ने कहा कि पंडित अलोपीदीन की गाड़ियाँ सरकारी हुक्म से रोकी गई हैं। तब पंडित जी ने पैंतरा बदला। इसमें उनकी यह समझ काम करती है कि सरकार तो सरकारी कर्मचारियों के माध्यम से ही अपना काम करती है। यही सरकार के काम करने का भी तरीका है। वे कहते हैं कि न तो हम सरकार को जानते हैं और न सरकारी हुक्म को। हमारे लिए तो आप ही अर्थात् दारोगा वंशीधर ही सरकार हैं। यह कहकर उन्होंने रिश्वत देने का कलात्मक और आत्मीय तर्क प्रस्तुत किया–"हम आपसे बाहर थोड़े ही हैं। आपका और हमारा तो आपस का मामला है। इसमें सरकार कहाँ से आ गई? हम आपकी सेवा करने के लिए हमेशा तैयार हैं। हम तो अभी आपकी सेवा में हाजिर होने वाले थे।" वस्तुतः यह रिश्वत देने वालों का सुपरिचित तर्क है। जब इससे भी मुंशी वंशीधर नही पिघले तो पहली बार पंडित अलोपीदीन आश्चर्यचकित हुए क्योंकि इससे पूर्व ऐसी परिस्थिति से उनका सामना ही नहीं हुआ था। इसके बावजूद उनका आत्मविश्वास खंडित नहीं हुआ। उनको लगा कि अभी यह नया लड़का है। ईमानदारी का नशा है। थोड़ी देर में ठीक हो जाएगा। शायद यह कुछ ज्यादा रुपये लेना चाहता है। वे अपने मुख्तार को बोले "लालाजी, एक हजार के नोट बाबू साहब को भेंट करो, आज इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।" जब मुंशीजी ने इस पर भी दया नहीं दिखाई तब संख्या बल पर आ गए। प्रेमचंद ने इसे धर्म और धन के संग्राम के रूप में पेश किया। फिर बीस हजार से होते–होते चालीस हजार तक प्रस्ताव दे दिया। वंशीधर ने स्पष्ट किया कि चालीस लाख भी उनको ईमानदारी के पथ से नहीं डिगा सकते। इस तरह अंततः पंडित अलोपीदीन हिरासत में ले लिए गए और मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

अब कहानी का अगला भाग प्रारम्भ होता है। प्रेमचंद ने बहुत कलात्मक तरीके से इस भाग का आरंभ किया है। दुनिया सोती थी पर दुनिया की जीभ जागती थी। इस बहाने से प्रेमचंद ने उस समय के समाज की चिंताओं पर टिप्पणी करनी शुरू की। सुबह–सुबह सभी लोग पंडित अलोपीदीन की गिरफ्तारी की चर्चा कर रहे थे। उन्हें आश्चर्य था कि नमक की तस्करी क्या इतनी बड़ी बात

है? सब लोग इस पर सहमत थे कि पापी का पाप कट गया। यहाँ प्रेमचंद व्यवस्था पर प्रहार करते हुए रेखांकित करते हैं कि पंडित अलोपीदीन के कार्यों की आलोचना करने वाले लोग कौन थे– ये थे पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले लोग, जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार अर्थात् भ्रष्टाचारी। ये सब लोग पंडित अलोपीदीन के कृत्य की नैतिक निंदा कर रहे थे। अर्थात् वे सब जो बेइमानों की श्रेणी में आते हैं। प्रेमचंद अलोपीदीन की निंदा के साथ–साथ इन बेइमानों की आलोचना भी करते चलते हैं। दूध में पानी मिलाकर बेचने वाला भी दोषी है, परन्तु जो पकड़ा गया है, फिलहाल सब उसके खिलाफ हो गए हैं, ताकि उनका पाप ढँका रहे। इन सबके बीच प्रेमचंद अंग्रेजों की नमक नीति की कहीं चर्चा भी नहीं करते। मूल्यों की दृष्टि से देखा जाए तो समाज में बेईमानी स्वीकृत जीवन मूल्य है, सिर्फ वंशीधर के पिता ही भ्रष्टाचार का समर्थन नहीं कर रहे हैं, शेष समाज भी उसका मूक समर्थक है। अतः यहाँ सभी यह मानकर चल रहे हैं कि ईमानदारी अल्पमत में है और उसका कारुणिक अंत तय है।

गिरफ्तार होने के दूसरे दिन कई सिपाहियों से घिरे हुए पंडित अलोपीदीन हाथों में हथकड़ियाँ और हृदय में ग्लानि और क्षोभ से भरे हुए तथा लज्जा से गर्दन झुकाए हुए कचहरी की तरफ चले तो शहर में हलचल मच गई। लोग उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़े। कचहरी में पहुँचते ही पंडित अलोपीदीन का रुतबा फिर से वही हो गया। प्रेमचंद ने टिप्पणी की कि इस 'अगाध वन के वे सिंह' थे। ''अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील–मुख्तार उनके आज्ञापालक और अरदली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे।'' कचहरी में विस्मय का कारण यह नहीं था कि पंडित अलोपीदीन ने ऐसा कानून–विरोधी काम किया, बल्कि यह था कि ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आए? अब उनके समर्थन में वकीलों की एक सेना तैयार की गई। हालत यह हुई कि न्याय के मैदान में धर्म और धन का युद्ध ठन गया। यहाँ मुंशी जी को अपना पक्ष कमजोर जान पड़ा। इसलिए वे अब चुपचाप एक तरफ खड़े हो गए। मुंशी वंशीधर के साथ प्रेमचंद को भी लगने लगा था कि यहाँ के कर्मचारी पक्षपात करने के आदी प्रतीत हो रहे हैं। इसलिए जहाँ पक्षपात हो, वहाँ न्याय की संभावना कम ही रहती है। मुकदमा तुरंत समाप्त हो गया। डिप्टी मजिस्ट्रट ने अपने फैसले में दो–तीन प्रमुख बातें लिखी–

1. ये बहुत बड़े आदमी हैं, इसलिए इन्होंने इस थोड़े से काम के लिए इतना बड़ा दुस्साहस किया है, ऐसा नहीं लगता।
2. मुंशी वंशीधर ने मेहनत से काम किया है, परन्तु वे उद्दण्ड और विचारहीन हैं।
3. उनकी इस पद्धति के कारण एक भले मानुष को इतना कष्ट हुआ।
4. नमक के मुकदमें बढ़ रहे हैं, ऐसे में मुंशी वंशीधर को सावधान रहना चाहिए।

इस तरह पंडित अलोपीदीन बाइज्जत बरी कर दिए गए। इस फैसले के सप्ताह भर बाद नमक विभाग से आदेश आया और उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया।

प्रेमचंद ने इस प्रकरण पर टिप्पणी की कि 'इस तरह उनकी कार्य परायणता का दंड उन्हें मिला।' इसके साथ ही मुंशी जी को कचहरी में उनकी ईमानदारी और निडरता के लिए व्यंग्य–विनोद का भी सामना करना पड़ा। नौकरी छूटने के बाद मुंशी वंशीधर अपने घर में पहुँचे तो यहाँ भी उन्हें विरोध और अवहेलना ही मिली।

इस घटना के सप्ताह भर बाद कहानी में एक नया और निर्णायक मोड़ आता है। जिस अलोपीदीन को मुंशी वंशीधर ने गिरफ्तार किया था, जिस अलोपीदीन के कारण मुंशी वंशीधर की नमक के दारोगा की नौकरी चली गई थी। सप्ताह भर बाद वही पंडित अलोपीदीन, मुंशी वंशीधर के घर आते हैं। ईमानदार मुंशी वंशीधर घर में पीड़ित अवस्था में बेरोजगार बैठे हैं। घर–परिवार वालों की कटूक्तियाँ सुन रहे हैं, वहीं पंडित अलोपीदीन सजीली बैलगाड़ी में बैठकर आते हैं। वे वंशीधर से निवेदन करते हैं कि मुंशी वंशीधर उनकी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर बन जाए। छः हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़ा, रहने को बंगला, नौकर–चाकर मुफ्त का प्रस्ताव दिया जाता है। यह वह समय है जब प्रेमचंद को सन् 1899 ई. में सहायक अध्यापक की नौकरी मिली, तब 18 रु. महीना वेतन तय हुआ था, जो 'उस समय मेरी निराशा व्यथित कल्पना में ऊँची से ऊँची उड़ान से भी ऊपर थे।' इसके 14–15 वर्ष बाद 500 रुपया महीना कितना अधिक है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

यह सब वंशीधर के एक गुण के कारण दिया गया था और वह गुण था– ईमानदारी। मुंशी वंशीधर सशंकित और लज्जित विनम्रता से कहते हैं कि वे इस पद के योग्य नहीं है। ऐसे महान कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी व्यक्ति की जरूरत है। पंडित अलोपीदीन अनुभवी व्यक्ति होने के नाते खरे सिक्के को पहचानने का माद्दा रखते हैं। समाज के लिए मुंशी वंशीधर कितने महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं इसे वे भली–भाँति समझते हैं और कहते हैं कि ''मुझे विद्वत्ता, अनुभव, मर्मज्ञता, कार्य–कुशलता किसी की आवश्यकता नहीं है। आप तो बस वही नदी किनारे वाला, बेमुरौव्वत, उद्दंड, कठोर परतु धर्मनिष्ठ दारोगा बने रहिए''।

मुंशी जी आदरपूर्वक इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं। अब इस कहानी को आप इस तरह से समझ सकते हैं कि ईमानदारी को उचित पुरस्कार प्राप्त हुआ, कि ईमानदारी को परास्त नहीं किया जा सकता। इसका एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है कि ईमानदारी ने अंततः बेईमान की नौकरी करना स्वीकार कर लिया, कि बेईमान ने अंततः ईमानदारी को लक्ष्मी के बल पर खरीद लिया और उसे अपनी सेवा में लगा दिया। प्रेमचंद ने इस तरह की कोई टिप्पणी नहीं की। मुंशी वंशीधर की स्वीकृति के साथ प्रेमचंद कहानी को समाप्त कर देते हैं। अब यह पाठक पर निर्भर करता है 105 कइस उस अंत का क्या अर्थ निकाले।

6.3 चरित्र–चित्रण

इस कहानी में दो प्रमुख पात्र हैं– पंडित अलोपीदीन और मुंशी वंशीधर। इनमें भी मुंशी वंशीधर कहानी के नायक हैं। वही नमक के दारोगा हैं। कहानी उनके क्रियाकलापों का वर्णन करती है और उन्हीं की घटनाओं के इर्दगिर्द घूमती है। पंडित अलोपीदीन भी कला की दृष्टि से सहायक पात्र ही माने जाएँगे। इसके अलावा कुछ अन्य सहायक पात्र हैं जो पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को

उद्धृत करने का कार्य करते हैं। कहानी के चरित्रों को समझने के लिए पहले सहायक पात्रों को समझने का प्रयास करते हैं।

6.3.1 सहयोगी पात्र

'नमक का दारोगा' में दो तरह के सहयोगी पात्र हैं– एक अनुपस्थित सहयोगी पात्र और दूसरे उपस्थित सहयोगी पात्र। अनुपस्थित सहयोगी पात्र वे पात्र हैं जो कहानी में स्वयं आते नहीं, परन्तु वे अपनी सक्रियता में कहानी का अर्थ विकसित करते हैं। ऐसे ही अनुपस्थित पात्रों में डिप्टी मजिस्ट्रेट आते हैं, जो स्वयं तो नहीं आते, परन्तु उनका आदेश आता है। उनके आदेश से पंडित आलोपीदीन बरी हो जाते हैं और मुंशी वंशीधर की नौकरी चली जाती है। इसी तरह वंशीधर की माँ अनुपस्थित पात्र है, परन्तु उसकी निराशा को लेखक ने चित्रित किया है। वंशीधर की पत्नी भी नौकरी छूटने के बाद उससे सीधे मुँह बात नहीं करती। इसी तरह सिपाही, चौकीदार, गाड़ीवान आदि का जिक्र आता है। कचहरी के वर्णन में वकील, मुख्तार आदि भी आते हैं।

उपस्थित सहयोगी पात्र

इस श्रेणी के पात्रों में मुंशी वंशीधर के पिता आते हैं। वे कहानी में दो बार आते हैं। पहली बार वे तब आते हैं, जब वंशीधर नौकरी के लिए जाने वाले थे। उस समय वे वेतन और रिश्वत के बारीक अंतर को समझाते हैं जिसमें वे कहते हैं कि ''वेतन तो पूर्णमासी का चाँद होता है, जो एक दिन आता है और घटते–घटते एक दिन समाप्त हो जाता है। वेतन मनुष्य देता है। ऊपरी आय तो झरने की तरह हमेशा प्यास बुझाता है। और यह आय ईश्वर देता है। फिर घर में बहनें हैं, उनका विवाह करना है। आर्थिक स्थिति खराब है, इसलिए गरजमंद से अधिकाधिक रुपये वसूल करो। वह दे देगा। जिसको गरज नहीं है, उससे थोड़े कम में ही संतोष करना चाहिए। बाकी तुम विद्वान हो, स्वयं रास्ता निकाल लो।'' वंशीधर पिता की बातें चुपचाप सुन लेता है और चल देता है। उसके बाद कहानी में पिता तब आते हैं, जब वंशीधर की नौकरी छूट जाती है। वंशीधर की ईमानदारी के कारण छूटी नौकरी की घटना से पिता बहुत निराश और क्रुद्ध है। उन्हें वंशीधर की यह ईमानदारी जरा भी पसंद नहीं है। वे उसे खूब खरी खोटी–सुनाते हैं। उनकी निराशा और असहायता उनकी बातों और विचारों में दिखाई देती है। कुछ दिन वे कहानी में बने रहते है। पंडित अलोपीदीन जब उनके घर आते हैं, तब वे उनकी चापलूसी करने लगते हैं और उनके सामने वंशीधर की हिमाकत की निंदा करते हैं।

कहानी में जमादार बदलू सिंह आते हैं। इन्हें मुंशी वंशीधर आदेश देते हैं कि पं. अलोपीदीन को गिरफ्तार कर लें। कचहरी के पूरे वातावरण का वर्णन प्रेमचंद स्वयं करते हैं। इसमें चपरासी, मुख्तार, वकील आदि होते हैं, परन्तु उनमें से किसी का चेहरा नहीं आता। वे कचहरी के अतिरिक्त पात्र हैं।

6.3.2 प्रमुख पात्र

पंडित अलोपीदीन

पंडित अलोपीदीन जब कहानी में पहली बार आते हैं तो वे अपनी हैसियत और पंडिताई का परिचय देते हैं। जब वे वंशीधर से मिलते हैं तो वंशीधर का अभिवादन नहीं करते अपितु उन्हें आशीर्वाद देते हैं।

पंडित अलोपीदीन बड़े जमींदार थे। उनके कई तरह के कारोबार थे, जिनका जिक्र कहानी में नहीं किया गया है। नमक की तस्करी भी उनका कारोबार ही था। इस कारोबार के कारण सरकारी कार्मचारियों को बराबर रिश्वत दिया करते थे। यह सेवा–सत्कार के रूप में हमेशा चलता रहने वाला कार्य था। इसलिए वे चलते–पुरजे आदमी माने जाते थे। न्यायालय में तो वे प्रतापी सिंह के समान थे। उनकी गिरफ्तारी के पश्चात् अभियोग का मुकदमा चलने पर यहाँ के लोगों को उनके कार्य पर आश्चर्य नहीं हो रहा था। उनको आश्चर्य इस बात पर हो रहा था कि जिसके पास असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कर कानून के पंजे में आए। कहानी में पंडित अलोपीदीन जब भी आते हैं, तब अपने वाक–चातुर्य से पाठकों को प्रभावित कर देते हैं। अधिकारी से लेकर चपरासी तक सभी कचहरी में उनके सहयोगी के रूप में दिखाई देते हैं। जब वे बाइज्जत छूटते हैं तो कुछ बोलते नहीं अपितु मुस्कराते हुए बाहर निकलते हैं। उनकी यह मुस्कुराहट ग्लानि की नहीं अपितु विजय की है।

जब मुंशी वंशीधर की नौकरी छूट गई और वे बेसहारा हो गए तब यही पंडित अलोपीदीन उनके पास गए और उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए बोले, ''मैंने हजारों रईस और अमीर देखे, हजारों उच्च अधिकारियों से काम पड़ा, किन्तु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बनाकर छोड़ दिया।'' उसी ईमानदारी की प्रशंसा करके पंडित अलोपीदीन ने मुंशी वंशीधर को अपनी संपत्ति का मैनेजर बना दिया। जब सब परिचित–मित्र–वकील, परिवार के लोग वंशीधर की निंदा कर रहे थे उस समय पंडित अलोपीदीन अपने व्यापार की सुरक्षा के लिए आगे की सोच रहे थे। यह काम मुंशी वंशीधर बेहतर ढंग से कर सकते हैं, यह दूर दृष्टि पंडित अलोपीदीन को मौके का लाभ उठाने वाला साथ ही व्यक्ति के सही चरित्र की पहचान रखने वाला विशिष्ट चरित्र बना देती है। सिर्फ पैसा कमाना ही बड़ी बात नहीं है, रिश्ते कमाना, मनुष्य की पहचान करना, सही व्यक्ति को सही जिम्मेदारी देना, यह भी सफल व्यापारी का लक्षण है। आज हम इस कहानी की जो भी व्याख्या करें, उस युग में यह कहानी और यह पात्र प्रशंसा का हकदार बन गया था।

मुंशी वंशीधर

मुंशी वंशीधर 'नमक का दारोगा' कहानी के नायक हैं। उनके क्रियाकलाप और चरित्र पर ही यह कहानी लिखी गई है। प्रेमचंद ने प्रारम्भ में उनकी शिक्षा का परिचय दिया। उस काल में लोग फारसी की प्रेम कथाएँ और श्रृंगार रस की कविताएँ पढ़कर सरकार में उच्च पद प्राप्त करते थे। मुंशी वंशीधर जुलेखा की विरह कथा समाप्त करके मजनूँ और फरहाद के प्रेम–वृत्तांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका का आविष्कार से अधिक महत्व की बात समझते हुए रोजगार की खोज में निकले। इसका तात्पर्य यह है कि उन्हें जीवन की व्यावहारिकता और जटिलता का कोई अनुभव नहीं था। अनुभवी हुए होते तो वे भी अपने पिता की तरह चालाक और रिश्वतखोरी के समर्थक हुए होते और तब वे इस कहानी के नायक नहीं बने होते।

आगे प्रेमचंद कहानी में वंशीधर की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि वे **आज्ञाकारी** पुत्र थे। वे इस अर्थ में आज्ञाकारी थे कि उन्होंने पिता की बातों को ध्यान से सुना। किसी भी बात का विरोध नहीं किया। हालाँकि उनके

अनुसार जीवन नहीं जिया। ऊपरी कमाई के समर्थन की बातें सुनने के बाद प्रेमचंद ने उनके बारे में लिखा, ''इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथ–प्रदर्शक और आत्मावलंबन ही अपना सहायक था।'' अर्थात् उनके लिए न पिता के धन कमाने के दूसरे साधनों से संबद्ध उपदेश महत्वपूर्ण थे और न साथ रहने वाले अन्य कर्मचारियों की सलाह। उनकी मानसिकता **ईमानदारी** से कार्य करने और समाज को बेहतर बनाने को दिखाई देती है।

अपनी **कार्यकुशलता और उत्तम आचार** से उनके अफसर उनसे प्रसन्न थे। तब तक जीवन सामान्य गति से चल रहा था। एक दिन उनके सामने नमक की तस्करी का एक प्रकरण आ गया। नमक की तस्करी रोकने के लिए ही उनकी नियुक्ति हुई थी। यद्यपि प्रेमचंद ने कहानी के आरम्भ में ही बता दिया था कि नमक की तस्करी रुक नहीं सकती, क्योंकि ईश्वरप्रदत्त वस्तु के व्यवहार का निषेध संभव नहीं है। लोग चोरी–छिपे व्यापार तो करेंगे ही। हालाँकि मुंशीजी अपनी जानकारी में इसे होने नहीं देंगे। साथ ही यह भी कहानी में प्रकट हो जाता है कि तस्करी रोकने का प्रयास करने वाले दारोगा इस विभाग में नौकरी नहीं कर पाएँगे। उन्हें विभाग छोड़कर जाना होगा। यह ज्ञान मुंशी वंशीधर को था और उन्होंने पंडित अलोपीदीन से कहा भी था कि ''मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह स्वभाव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है।'' केवल पिता द्वारा दिए गए उपदेश ही उनकी थाती थे। उनमें अनुभव की भी कमी थी। जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, वे फारसी प्रेम कथाएँ पढ़कर आए थे। उनको अमेरिका की खोज के महत्व के बारे में भी समझ नहीं थी। उनमें तो बस यही गुण था कि वे ईमानदार थे और किसी भी लोभ, लालच या भय से डिगने वाले नहीं थे। पंडित अलोपीदीन के शब्दों में मुंशी वंशीधर 'बेमुरौव्वत, उद्दंड, कठोर परन्तु धर्मनिष्ठ दारोगा थे।' उनके इसी गुण पर पंडित अलोपीदीन पराजित होकर भी मुग्ध थे। प्रेमचंद भी इसी कारण मुंशी जी के समर्थक दृष्टिगत होते हैं।

6.4 कहानी का परिवेश

एक निम्न मध्यवर्गीय गरीब परिवार के परिवेश से कहानी का प्रारंभ होता है और आगे चलकर कहानी नदी के किनारे पहुँच जाती है। जाड़े के दिन थे और रात का समय, तस्करी के लिए सबसे अच्छा होता है। इस काल में नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे। दारोगा अपने कमरे में सो रहे थे। उसी समय वे अलोपीदीन की गाड़ियाँ नमक भर कर नदी पार कर रही होती हैं। दारोगा जी को नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट और मल्लाहों का कोलाहल सुनाई पड़ा। इसी परिवेश में पंडित अलोपीदीन और मुंशी वंशीधर के बीच बहस होती है, जिसे सुनकर गाड़ीवानों में हलचल मच गयी। यहीं पंडित अलोपीदीन मुंशी वंशीधर द्वारा गिरफ्तार कर लिए जाते हैं।

कहानी का अगला हिस्सा कचहरी में घटित होता है।यहाँ आने के बाद अलोपीदीन का आत्मविश्वास लौट आता है। वे इस 'अगाध वन के सिंह' थे। यहाँ का सारा परिवेश तस्कर आरोपी पंडित अलोपीदीन का पक्षधर था। सभी उसे सजा से बचाने में लगे हुए थे। मुंशीजी को लगने लगा था कि न्याय उनसे कुछ खिंच हुआ सा है। पक्षपात निश्चित था। जिस बात से मुंशी वंशीधर

आशंकित थे वही हुआ और पंडित अलोपीदीन बरी हो गए। न्यायालय ने ईमानदार दारोगा को हिदायत दी कि उसे अपने काम से सजग और सचेत रहना चाहिए। साथ ही यह भी जताया कि मुंशी जी की उद्दंडता और विचारहीनता के कारण एक भले मानुष को कष्ट झेलना पड़ा।

इसके सप्ताह भर बाद मुंशी वंशीधर की नौकरी चली जाती है और कहानी का परिवेश उनके घर पर सिमट आता है। यहाँ कोई भी उनके साथ साहनुभूति से पेश नहीं आता। यहाँ तक कि पत्नी भी उनसे सीधे मुँह बात नहीं करती। ऐसे में उनके घर के बाहर एक सजा हुआ रथ आता है। ''हरे और गुलाबी परदे, पछाहियें बैलों की जोड़ी, उनकी गर्दनों में नीले धागे, सींगे पीतल से जड़ी हुई कई नौकर लाठियाँ कंधों पर रखे साथ थे।'' इस रथ में पूरे साज–सज्जा से बैठकर पंडित अलोपीदीन मुंशी वंशीधर के घर आते हैं। वंशीधर के पिता ठकुर सुहाती कर रहे हैं। पंडित अलोपीदीन मुंशी वंशीधर को अपनी संपूर्ण जायदाद का स्थायी मैनेजर बनाने आए हैं मुंशीजी पहले विनम्रता से मना करते हैं फिर कृतज्ञ भाव से यह पद स्वीकार कर लेते हैं और कहानी समाप्त हो जाती है।

कहानी का परिवेश उस युग का है, जब भारत में निजी सवारी के लिए धनाढ्य व्यक्तियों के पास भी बैलगाड़ी हुआ करती थी। तस्करी का कार्य भी इसी बैलगाड़ी से होता था। मोटर गाड़ी का आगमन नहीं हुआ था। धनी लोग या तो सूदखोर होते थे या जमींदार। कल–कारखानों का निर्माण भी तब तक नहीं हो पाया था। सरकारी अधिकारी भी धनवान हुआ करते थे। रिश्वत, सामान्य व्यापारिक व्यवहार था। पक्की सड़कें नहीं बनी थीं तथा नदियों पर पुल भी नहीं बन पाए थे। शिक्षा की स्थिति तो यह थी कि लोग अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई धर्म को एक ही समझते थे। जातिगत वर्गीयता में समाज बँटा हुआ था। इसीलिए पंडित अलोपीदीन, मुंशी वंशीधर को प्रणाम या नमस्कार नहीं करते, उनका अभिवादन नहीं करते अपितु उन्हें पहले संवाद में ही 'आशीर्वाद' देते हैं।

6.5 संरचना–शिल्प

यह एक वर्णनात्मक कहानी है। इसमें प्रेमचंद एक ईमानदार नमक के दारोगा की कहानी कहते हैं। कहानी का प्रारंभ वैचारिक गद्य के रूप में होता है, जहाँ प्रेमचंद अपने युग की समझ देते हैं। कहानी की इस पृष्ठभूमि में निर्माण के लिए प्रेमचंद देश–दुनिया की बातें कहते हैं ताकि नायक को इस परिवेश में स्थापित किया जा सके। मुंशी वंशीधर के पिता भी इसी तरह की बातें नायक को समझाते हैं। इसके बाद प्रेमचंद वर्णन करना प्रारम्भ करते हैं। कहानी के भाग 2 का आरंभ होता है– ''जाड़े के दिन थे और रात का समय।'' इस भाग में कहानी के दोनों प्रमुख पात्रों का आमना–सामना होता है। इसके पश्चात् थोड़ी–सी नाटकीय घटना के साथ दोनों पात्रों में तार्किक बहस होती है। नमक की तस्करी करने वाला पात्र (पंडित अलोपीदीन) ईमानदार पात्र (मुंशी वंशीधर) के सामने रिश्वत की पेशकश करता है। और ईमानदार दारोगा रिश्वत की इस पेशकश को अस्वीकार कर देता है। दोनों के अपने तर्क हैं और ईमानदार तर्क है। लेखक के रूप में प्रेमचंद किसी पात्र का पक्ष नहीं लेते। हालाँकि उनकी सहानुभूति ईमानदार–कर्तव्यनिष्ठ–धर्मात्मा पात्र मुंशी वंशीधर के साथ है। इस

परस्पर संवाद का विकास होता है और अंततः पंडित अलोपीदीन गिरफ्तार हो जाते हैं।

6.5.1 शैली

कहानी की घटनाएँ अत्यंत सामान्य है। प्रेमचंद सहजता से उन घटनाओं का वर्णन करते जाते हैं। इन घटनाओं से दोनों पात्रों का चरित्र उद्घाटित होता रहता है। यही लेखक का उद्देश्य भी है। इसके साथ–साथ प्रेमचंद समाज की मानसिकता को भी उद्घाटित करते जाते हैं। इस हेतु वे वैचारिक गद्य से लैस पंक्तियाँ लिखते जाते हैं। ''पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील–मुख्तार उनके आज्ञा पालक और अरदली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया ? बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आये। ऐसा मनुष्य जिसके असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आये। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था।'' इसी वर्णनात्मक शैली में प्रेमचंद कचहरी का वर्णन करते हैं। यहाँ वकील, डिप्टी मजिस्ट्रट, कचहरी के अधिकारी, चपरासी, चौकीदार आद पात्रों पर प्रेमचंद निष्कर्षात्मक टिप्पणियाँ करते जाते हैं। ''वह न्याय का दरबार था। परन्तु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था। किंतु पक्षपात और न्याय का क्या मेल ? जहाँ पक्षपात हो, वहाँ न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुकदमा शीघ्र ही समाप्त हो गया।''

कहानी आगे बढ़ती है। उसका धीमे–धीमे विस्तार होता है। जिस सहजता से पंडित अलोपीदीन गिरफ्तार होते हैं, उसी सहजता से छूट भी जाते हैं। प्रेमचंद उसी सहजता से पाठक को परिस्थितियों से अवगत कराते जाते हैं। अंत में कहानी अपने चरम बिंदु पर पहुँचती है। यहाँ सभी पात्रों को आश्चर्य होता है। पाठक ने भी इस चरम बिंदु की कल्पना नहीं की थी। मुंशी वंशीधर कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं रहते। सिर्फ आभार प्रकट कर पाते हैं। लगता है कि इसी चरम बिंदु तक पहुँचने के लिए प्रेमचंद ने यह कहानी लिखी है। कहानी के दोनों पात्र एक दूसरे के कट्टर विरोधी हैं। मुंशी वंशीधर ने पंडित अलोपीदीन को गिरफ्तार करवाया है। वहीं पंडित अलोपीदीन उन्हें उनकी ईमानदारी के लिए पुरस्कृत करने आते हैं और अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियत करने का प्रस्ताव रखते हैं। दोनों पात्रों के इस सुखद मिलन में कहानी समाप्त हो जाती है।

प्रेमचंद ने कहानी के इस सुखद अंत पर कोई टिप्पणी नहीं की। इस खुलेपन के कारण कहानी के दो परस्पर विरोधी अर्थ निकलते हैं। एक अर्थ यह है कि आप ईमानदारी को कभी परास्त नहीं कर सकते। ईमानदार व्यक्ति का जीवन भी ठाठ से गुजरता है। दूसरा अर्थ यह भी निकलता है कि इस तरह बेईमानी ने ईमानदारी को खरीद लिया और उसे अपनी सुरक्षा में लगा दिया। इस कहानी की कला की विशेषता इसके खुलेपन में है। प्रेमचंद अपनी तरफ से इसका कोई अर्थ नहीं निकालते।

6.5.2 भाषा

प्रेमचंद उर्दू की परंपरा से हिंदी में आए थे। यह कहानी भी उन्होंने पहले उर्दू में लिखी थी। इसलिए इनकी भाषा पर आम बोलचाल की उर्दू परंपरा का असर साफ दिखाई देता है। यदि भाषिक परंपरा की दृष्टि से देखा जाए तो उनकी भाषा राजा लक्ष्मण सिंह की परंपरा की भाषा नहीं है, वरन् राजा शिवप्रसाद सितारे हिंदी की भाषा की परंपरा है। भारत में कई वर्षों तक फारसी राजकाज की भाषा थी और कचहरी की भाषा भी हिंदी नहीं थी। इसलिए कई अरबी–फारसी शब्द हिंदी में सुनाई पड़ते हैं। कचहरी, वकील, मुख्तार, तजवीज, ओहदेदार, दस्तावेज, गुलाम बरकत, बेगरज आदि शब्द कहानी में सहज ही दिखाई पड़ते हैं। प्रेमचंद कहानी में ने जान–बूझकर इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। ये शब्द सहज ही आ जाते हैं। इसी तरह तत्सम शब्दों का प्रयोग भी इस कहानी में मिलता है–यथा ईश्वर प्रदत्त, निषेध, सर्वसम्मानित, प्राबल्य, आविष्कार वृक्ष, प्रवाह, क्षोभ आदि। प्रेमचंद की भाषा मुहावरेदार है। भाषा के सहज प्रवाह को बनाए रखने के लिए वे मुहावरों का इस्तेमाल करते हैं जैसे ''बैर मोल लिया', 'हाथ मलते रहे', 'सिर पीट लिया', 'किनारे पट का वृक्ष', 'पौ बारह' आदि। कई बार प्रेमचंद स्वयं मुहावरे गढ़ भी लेते हैं। जैसे– 'दुनिया सोती थी पर दुनिया की जीभ जागती थी।' अपनी बात को संक्षेप में और प्रभावशाली ढंग से करने के लिए वे मुहावरों का उपयोग करते हैं।

प्रेमचंद गुरु–गंभीर भाषा का प्रयोग करने से बचते हैं। वे गंभीर बात कहने के लिए व्यंग्य और परिहास का सहारा लेते हैं। परिहास के कारण व्यंग्य की कटुता कम हो जाती है, लेकिन अर्थ की गंभीरता बनी रहती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद की भाषा पठनीय होती है। पाठक उसमें रम जाता है।

6.6 मूल्यांकन

'नमक का दारोगा' प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाती हैं इस कहानी का जिक्र 'पंचपरमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'लाग–डाट', 'सवा सेर गेहूँ', 'दो बैलों की कथा', 'पूस की रात' और 'कफन' के साथ लिया जाता है। प्रेमचंद अपने समय के सजग लेखक थे इसलिए उन्होंने नमक जैसे ज्वलंत मुद्दे को अपनी कहानी का विषय बनाया। हालाँकि इसे उन्होंने उग्र अंग्रेज विरोधी भावनाओं के आवेग से बचाया। नमक की चर्चा करना ही उस युग में इतनी बड़ी बात थी। भारत के स्वाधीनता संग्राम में नमक की भूमिका बहुत महत्वूपर्ण है। महात्मा गाँधी ने दांडी मार्च के द्वारा इसके राजनीतिक महत्व को प्रकट किया। प्रेमचंद की विशिष्टता इस बात में भी है उन्होंने सन् 1914 से पहले इस विषय पर कहानी लिखी।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों में से सही पर (√) तथा गलत पर (×) का निशान लगाइए–

   क) मुंशी वंशीधर ने अमेरिका के आविष्कार का गहन अध्ययन किया था। (सही / गलत)

   ख) मुंशी वंशीधर के पिता ने उनकी ऊपरी आय के गुर बताऐ थे। (सही / गलत)

ग) मुंशी वंशीधर ने पंडित अलोपीदीन की जायदाद का स्थायी मैनेजर बनने से इन्कार कर दिया। (सही / गलत)

2. यह वक्तव्य किस पात्र ने कब दिया था ?

''मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते–घटते लुप्त हो जाता है।''

3. पंडित अलोपीदीन ने मुशी वंशीधर को आरंभ में कितने रूप्ये की रिश्वत की पेशकर की और बढ़ते–बढ़ते कितने रूप्ये तक बढ़ा दिए थे।

....

....

....

....

4. पंडित अलोपीदीन ने अपनी जायदाद का स्थायी मैनेजर बनाते समय कितना वेतन देना तय किया था ?

....

....

....

....

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

क) पंडित अलोपीदीन इस अगाध मन के .... थे।

ख) पंडित अलोपीदीन को ....पर अखंड विश्वास था।

ग) गाड़ियाँ कहाँ जाएँगी, उत्तर मिला .... ।

6. मुंशी वंशीधर की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए। (6 पंक्तियों में)

....

....

....

....

....

....

6.7 सारांश

'सोज़े वतन' के प्रकाशन के बाद सन् 1914 से पहले 'नमक का दारोगा' कहानी का प्रकाशन हुआ। यह कहानी पहले उर्दू में प्रकाशित हुई। बाद में इसे हिंदी में प्रकाशित किया गया। यह प्रेमचंद की संक्षिप्त और सुगठित कहानी है। इस कहानी के प्रमुख पात्र मुंशी वंशीधर और पंडित अलोपीदीन हैं। पंडित

आलोपीदीन यहाँ के जमींदार हैं जो नमक की तस्करी करते हुए पकड़े जाते हैं इन्हें नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर पकड़ते हैं। पंडित अलोपीदीन उन्हें चालीस हजार रुपये रिश्वत देने की पेशकश करते हैं, लेकिन दारोगा ईमानदारी पर रहते है। कोर्ट में पंडित अलोपीदीन बरी हो जाते हैं। ईमानदारी और बेईमान के द्वंद्व के अंत में पंडित अलोपीदीन ईमानदार मुंशी वंशीधर को अपनी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियुक्त कर देते हैं और उन्हें अच्छा वेतन और सुविधाएँ देते हैं।

कहानी का आधार सरकार द्वारा ईश्वर प्रदत्त वस्तु के उपयोग की रोक है। हालाँकि आगे चलकर प्रेमचंद ने सरकार के इस कार्य का कहीं जिक्र नहीं किया। कहानी के प्रारम्भ में इसके प्रभाव का सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इन दोनों पात्रों के अलावा प्रेमचंद ने समाज की मानसिकता पर भी गहन टिप्पणियाँ की हैं। अंत में प्रेमचंद अपनी ओर से कोई विशेष टिप्पणी नहीं करते और न ही संदेश परक वाक्य कहते हैं। इसलिए कहानी के दो परस्पर विरोधी अर्थ निकलते हैं। एक तो यह कि यह कहानी ईमानदारी के विजय की कहानी है। बेईमान पंडित अलोपीदीन को अंततः ईमानदारी के सामने झुकना पड़ता है। दूसरे, यह भी अर्थ किया जा सकता है कि अंततः ईमानदारी मजबूर होकर बेईमानी की सेवा करने के लिए पहुँच जाती है। अर्थात् अंतिम विजय पंडित अलोपीदीन की ही होती है। मुंशी वंशीधर को पंडित अलोपीदीन का कृतज्ञ होना पड़ता है कहानी की भाषा सहज और प्रवाहपूर्ण है।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) गलत, (ख) सही, (ग) गलत।
2. यह मुंशी वंशीधर के पिता ने वंशीधर को उस समय समझाया था जब वंशीधर नौकरी के लिए जाने वाले थे।
3. पंडित अलोपीदीन ने आरम्भ एक हजार रुपये की रिश्वत के प्रस्ताव से की थी, जिसे उन्होंने बढ़ाते–बढ़ाते चालीस हजार रुपये तक पहुँचा दिया था।
4. छः हजार रुपये वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़ा, रहने को बंगला नौकर–चाकर मुफ्त।
5. (क) सिंह, (ख) लक्ष्मी जी, (ग) कानपुर।
6. उत्तर के लिए देखिए भाग 6.3

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 7 'आकाशदीप' का वाचन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 जयशंकर प्रसाद का परिचय

7.3 'आकाशदीप' कहानी का वाचन

7.4 कथा सार

7.5 संदर्भ सहित व्याख्या

7.6 सारांश

7.7 कठिन शब्दों के अर्थ

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

यह इकाई साहित्यकार जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' के वाचन पर आधारित है। इस इकाई को पढ़ने बाद आप :

- जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय जान सकेंगे;
- 'आकाशदीप' के कहानी का वाचन कर सकेंगे
- 'आकाशदीप' कहानी के कथा सार जान सकेंगे;
- कहानी के एक अंश की व्याख्या समझ सकेंगे; और
- कहानी के कठिन शब्दों के अर्थ जान सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'आकाशदीप' कहानी दो प्रमुख पात्रों चम्पा और बुद्धगुप्त से संबद्ध है। नायिका प्रधान इस कहानी में समुद्री जीवन के परिवेश को ऐतिहासिक संदर्भों में चित्रित किया गया है। यह कहानी संवादों के माध्यम से विकसित होती है और अन्य चरित्रों एवं घटनाओं की जानकारी हमें संवादों और लेखक द्वारा दिए गए विवरणों से प्राप्त होती है। 'आकाशदीप' कहानी में सात भाग हैं जिनमें पूरी कथा समाहित है। संवादों के माध्यम से प्रसाद जी कहानी में पाठक को घटनाक्रम से परिचित कराते चलते हैं।

सर्वप्रथम हम जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय प्रस्तुत करेंगे। उसके बाद कहानी का वाचन आरंभ करेंगे।

7.2 जयशंकर प्रसाद का परिचय

जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी, 1889 में गोवर्द्धन सराय, बनारस में हुआ और उनकी मृत्यु क्षय रोग से 14 जनवरी, 1937 को बनारस में हुई। उनके दादा का सुरती

का व्यवसाय था। उनके पिता का नाम बाबू देवी प्रसाद और माता का नाम मुन्नी देवी था। किशोरावस्था में ही इनके पिता और फिर माता और बड़े भाई का देहांत हो गया था। तब उनके ऊपर परिवार का दायित्व आ गया था। उसका निर्वाह करते हुए उन्होंने नियमित रूप से जीवन भर साहित्य सृजन किया। प्रसाद जी छायावाद के चार स्तम्भों में से एक थे। उनका महाकाव्य 'कामायनी' छायावाद की प्रतिनिधि रचना माना जाता है। नाटक के क्षेत्र में प्रसाद जी का योगदान ऐतिहासिक है। उन्होंने अपने नाटकों में प्राचीन भारतीय इतिहास को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में जीवंत कर दिया था। 'तितली' और 'कंकाल' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। एक 'इरावती' उपन्यास को वे पूरा नहीं लिख सके।

प्रसाद जी की आरंभिक शिक्षा क्वींस कॉलेज, बनारस में हुई। उनकी स्कूली शिक्षा मात्र आठवीं तक हुई। बाद में उनका अध्ययन घर पर ही हुआ। उन्होंने हिंदी, उर्दू, संस्कृत और फारसी का गंभीर अध्ययन किया। वे वेद, पुराण, इतिहास और साहित्यशास्त्र के गंभीर अध्येता थे। यह अध्ययन उनकी रचनाओं में दिखाई देता है।

उनकी पहली कहानी 'ग्राम' 1912 में 'इंदु' पत्रिका में प्रकाशित हुई। उस समय हिंदी–उर्दू में प्रेमचंद की कहानियों की धूम थी। साहित्य की दुनिया में महावीर प्रसाद द्विवेदी का बोलबाला था, जो साहित्य से समाज सुधार की अपेक्षा रखते थे। प्रसाद जी ने अपने आपको इन सब प्रभावों से बचाए रखा तथा स्वच्छंदतावादी प्रेम की कहानियाँ लिखीं। प्रसाद की रचना की एक विशिष्ट परंपरा बनी, जो प्रेमचंद की परंपरा के समानांतर चली। जयशंकर प्रसाद के कहानी संग्रह हैं– छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी और इन्द्रजाल। उन्होंने कुल 72 कहानियाँ लिखीं। इनमें आकाशदीप, इन्द्रजाल, गुंडा, छोटा जादूगर, प्रतिध्वनि, पुरस्कार, स्वर्ग के खंडहर में, सिकंदर की शपथ आदि बहुत चर्चित और प्रशंसित हुई हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों में उनके नाटक, कविता और कहानियों का अध्ययन कराया जाता है। स्कूल स्तर के पाठ्यक्रम में भी प्रसाद जी की रचनाओं को पढ़ाया जाता है।

प्रसाद की कहानियों में प्रेम एक तर्कातीत भाव के रूप में आता है। वह प्रसाद के पात्रों को स्वार्थ की संकुचित चेतना से मुक्त करके उच्च मानवीय धरातल पर पहुँचा देता है। सामान्य लोग और पाठक उसके प्रति प्रशंसा का भाव रखते हैं, हालाँकि उसका अनुसरण नहीं कर पाते। आकाशदीप की चम्पा ऐसी ही नायिका है। प्रसाद जी की कहानियों के वर्णन में भव्यता रहती है। कहानी में कहीं भी सरलता या हल्कापन नहीं होता। वे सीधा–सरल वाक्य नहीं लिखते। हमेशा घुमावदार, संस्कृतनिष्ठ, ओजपूर्ण या आवेगपूर्ण भाषा का प्रयोग करते हैं। तत्सम संस्कृत शब्दों के बावजूद उनकी भाषा की सम्प्रेषणीयता बनी रहती है। उन्होंने हिंदी में प्रेमचंद की यथार्थवादी कहानी परंपरा के साथ–साथ रोमांटिक भावुकतापूर्ण कहानियाँ लिखीं।

7.3 'आकाशदीप' कहानी का वाचन

''बंदी।''

''क्या है सोने दो।''

''मुक्त होना चाहते हो।''

''अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।''

''फिर अवसर न मिलेगा।''

''बड़ा शीत है, कहीं से एक कंबल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।''

''आँधी की संभावना है। यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं।''

''तो क्या तुम भी बंदी हो।''

''हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।''

''शस्त्र मिलेगा।''

''मिल जाएगा। पोत से संबद्ध रज्जु काट सकोगे ?''

''हाँ।''

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं। दोनों बंदी आपस में टकराने लगे। पहले बंदी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बंधन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक–दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा–स्नेह का असंभावित आलिंगन। दोनों ही अंधकार में मुक्त हो गये। दूसरे बंदी ने हर्षतिरेक से उसको गले से लगा लिया। सहसा उस बंदी ने कहा ''यह क्या? तुम स्त्री हो।''

''क्या स्त्री होना कोई पाप है ?'' – अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

''शस्त्र कहाँ है, तुम्हारा नाम ?''

''चम्पा।''

तारक खचित नील अंबर और समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आंदोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकालकर फिर लुढ़कते हुए बंदी के समीप पहुँच गई। सहसा पोत से पथ–प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा–आँधी।

आपत्ति–सूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बंदी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बंदी ढुलक कर उस रज्जु के पास पहुँचा, जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गये। तरंगे उद्वेलित हुईं, समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कंदुक–क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी। एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बंदी खिलखिला कर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

2

अनन्त जलनिधि में ऊषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शांत था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बंदी मुक्त हैं।

नायक ने कहा– ''बुद्धगुप्त ! तुमको मुक्त किसने किया।''

कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्त ने कहा– ''इसने।''

नायक ने कहा– ''तो तुम्हें फिर बंदी बनाऊँगा।''

''किसके लिये ? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा।

''नायक! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।''

''तुम? जलदस्यु बुद्धगुप्त? कदापि नहीं।''—चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा! चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

''तो तुम द्वंद्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वह स्वामी होगा।'' इतना कहकर बुद्धगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

भीषण घात—प्रतिघात आरंभ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गतिवाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिए। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गए। परंतु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणें में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण हाथों में चमक उठा। नायक की कायर आँखें प्राण—भिक्षा माँगने लगीं।

बुद्धगुप्त ने कहा—''बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं ?''

''मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ। मैं विश्वासघात न करूँगा।''

बुद्धगुप्त ने उसे छोड़ दिया। चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना विहीन कर दिया। बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त—बिंदु विजय तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा—''हम लोग कहाँ होंगे ?''

''बालीद्वीप से बहुत दूर, संभवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना—जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।''

''कितने दिनों में हम लोग वहाँ पहुँचेंगे ?''

''अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिये खाद्य का अभाव न होगा।''

सहसा नायक ने नाविकों को डाँड़ लगाने की आज्ञा दी, और स्वयं पतवार पकड़कर बैठ गया। बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा—''यहाँ एक जलमग्न शैलखण्ड है। सावधान न रहने से नाव टकराने का भय है।''

3

''तुम्हें इन लोगों ने बंदी क्यों बनाया?''

''वणिक् मणिभद्र की पाप—वासना ने।''

''तुम्हारा घर कहाँ है ?''

''जाह्नवी के तट पर। चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिताने ही सात दस्युओं को मारकर जल समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से बंदी बना दी गई। चम्पा रोष सेजल रही थी।

'मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ, चम्पा परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी ?''

''मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाय।'' चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थी। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या–व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र वक्ष पर विलम्बमयी राग रञ्जित संध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुंतल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दांत दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह थी कोमलता!

उसी समय नायक ने कहा–हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये। बेला से नाव टकराई। चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। माँझी भी उतरे। बुद्धगुप्त ने कहा, ''जब इसका कोई नाम नहीं है, तो हम लोग इसे चम्पा द्वीप कहेंगे।''

चम्पा हँस पड़ी।

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में दीजिए :

   क) यह कहानी किस स्थान पर घटित होती है।

   ....

   ख) बुद्धगुप्त किस स्थान का निवासी था ?

   ....

   ग) चम्पा कहाँ की रहने वाली थी ?

   ....

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   क) जलदस्यु का नाम .... था।

   ख) नाव पर केवल .... नाविक और .... थे।

4

पाँच बरस बाद –

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झलमला रहे थे। चन्द्र के उज्ज्वल विजय पर अंतरिक्ष में शरदलक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

चम्पा के एक उच्चसौध पर बैठी हुई तरुणी चम्पा दीपक जला रही थी। बड़े यत्न से अभ्रक की मंजूषा में दीप धरकर उसने अपनी सुकुमार उँगलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थीं। डोरी धीरे–धीरे खींची गई। चम्पा की कामना थी कि उसका आकाशदीप नक्षत्रों से हिलमिल जाय, किन्तु वैसा होना असंभव था। उसने आशाभरी आँखें फिरा लीं।

सामने जलराशि का रजत श्रृंगार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालायें बना रही थीं और वे मायाविनी छलनायें अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं। दूर–दूर से धीवरों का वंशी–झनकार उनके ंगीत सा मुखरित होता था। चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जल राशि में उसके कण्डील का प्रतिबिम्ब अस्तव्यस्त था, वह अपनी पूर्णता के लिए सैंकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देखकर पुकारा ''जया।''

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। वह जंगली थी। नील नभोमण्डल से मुख में शुद्ध नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते। वह चम्पा को रानी कहती, बुद्धगुप्त की आज्ञा थी।

''महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो।'' चम्पा ने कहा। जया चली गई।

दूरागत पवन चम्पा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। वह दीर्घकाल दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रख चमत्कृत कर दिया। उसने फिर कर कहा–''बुद्धगुप्त!''

''बावली हो क्या ? यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है ?''

''क्षीरनिधिशायी अनंत की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाशदीप जलवाऊँ ?''

''हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चहती हो ? उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है ?''

''हाँ, वह भी कभी भटकते हैं, भूलते हैं नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते ?''

''तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पारानी।''

''मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है। महानाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लाद कर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी। बुद्धगुप्त उस विजन अनंत में जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे हम तुम परिश्रम से थककर पालों में शरीर लपेटकर एक दूसरे का मुँह क्यों देखते थे ? वह नक्षत्रों की मधुर छाया–''

''तो चम्पा! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।''

''नहीं–नहीं, तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी; परंतु ह्दय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाशदीप पर व्यंग कर रहे हो। नाविक उस प्रचण्ड आँधी में प्रकाश की एक एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती, 'भगवान मेरे पथ भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।' और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते–'साध्वी तेरी प्रार्थना से भगवान् ने संकटों में मेरी रक्षा की है। वह गद्गद् हो जाती। मेरी माँ? आह नाविक यह उसी की पुण्य स्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की

मृत्यु के निष्ठुर कारण, जलदस्यु हट जाओ। सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठा कर हँस पड़ा।

''यह क्या चम्पा! तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो''—कहता हुआ चला गया। चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी—सी घूमती रही।

5

निर्जन समुद्र के उपकूल में बेला से टकरा कर लहरें बिखर जाती थीं पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शांत गंभीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।

चम्पा और जया धीरे—धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गईं। तरंग से उठते हुए पवन ने उनके वसन को अस्त—व्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी सी नौका आई। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चम्पा मुग्ध सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

''इतना जल इतनी शीतलता हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी ? नहीं तो जैसे बेला में चोट खाकर सिंधु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ ? या जलते हुए स्वर्ण गोलक सदृश अनंत जल में डूब कर बुझ जाऊँ?'' चम्पा के देखते—देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिम्ब धीरे—धीरे सिंधु में चौथाई—आधा, फिर संपूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निश्वास लेकर चम्पा ने मुँह फेर लिया। देखा, तो महानाविक का बजरा उसके पास है। बुद्धगुप्त ने झुक कर हाथ बढ़ाया। चम्पा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गयी। दोनों पास—पास बैठ गये।

''इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न शैलखण्ड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती, चम्पा तो ?''

''अच्छा होता, बुद्धगुप्त! जल में बंदी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है।''

''आह चम्पा, तुम कितनी निर्दय हो! बुद्धगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिए नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नई प्रजा खोज सकता है, नये राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो। कहो, चम्पा! वह कृपाण से अपना हृदय पिण्ड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दें! महानाविक जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था—घुटनों के बल चम्पा के समाने छलछलाई आँखों से बैठा था।

सामने शैलमाला की चोटी पर हरियाली में विस्तृत जल देश में नील पिंगल संध्या, प्रकृति की सहृदय कल्पना विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहनी के रहस्यपूर्ण नीलजाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अंतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों में भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिंधु का। किन्तु उस परिरम्भ में सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

''बुद्धगुप्त! आज मैं अपने प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार–बार धोखा दिया। चमककर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया।

''तो आज से मैं विश्वास करूँ, क्षमा कर दिया गया ?'' आश्चर्यचकित कम्पित कंठ से महानाविक ने पूछा।

''विश्वास कदापि नहीं बुद्धगुप्त! ज्ब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ ? मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।'' चम्पा रो पड़ी।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या तम से अपनी आँखें बंद करने लगी थी। दीर्घ निश्वास लेकर महानाविक ने कहा–इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश गृह बनाऊँगा, चम्पा! यही उस पहाड़ी पर। संभव है कि मेरे जीवन की धुँधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय!

6

चम्पा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। वह बहुत दूर तक सिंधु जल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी शैलमाला पर चम्पा के आदि निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चम्पा को बनदेवी सा सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक नाविकों की श्रेणी में वन–कुसुम–विभूषिता चम्पा शिविकारूढ़ होकर जा रही थी।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चम्पा के नाविकों को सवधान करने के लिए सुदृढ़ दीप–स्तम्भ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्तम्भ के द्वार पर खड़ा था। शिविका से सहायता देकर चम्पा को उसने उतारा। दोनों ने भीतर पदार्पण किया था कि बाँसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुम भूषण से सजी वन बालाएँ फूल उछालती हुई नाचने लगीं।

दीप–स्तम्भ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चम्पा ने जया से पूछा– ''यह क्या है जया? इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लाईं ?''

''आज रानी का ब्याह है न ?' कह कर जया ने हँस दिया। बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झकझोर कर चम्पा ने पूछा–क्या यह सच है?

''यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो यह सच भी हो सकता है, चम्पा! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती में दबाये हूँ।''

''चुप रहो, महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकार तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा ?''

''मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।''

''यदि मैं इसका विश्वास कर सकती बुद्धगुप्त, वह दिन कितना सुंदर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान होते!''

जया नीचे चली गई थी। स्तम्भ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुद्धगुप्त और चम्पा एकांत में एक दूसरे के सामने बैठे थे।

बुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिए। उच्छ्वसित शब्दों में वह कहने लगा–''चम्पा, हम लोग जन्मभूमि भारतवर्ष से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इन्द्र और शची के समान पूजित हैं। पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए है। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश! वह महिमा की प्रतिमा! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है, परन्तु मैं क्यों नहीं जाता ? जानती हो, इतना महत्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ मेरा पत्थर सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्तमणि की तरह द्रवित हुआ।''

''चम्पा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कराने लगी। पशु–बल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और एकांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका!''

''चलोगी चम्पा? पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लाद कर राजरानी–सी जन्मभूमि के अंक में? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिए प्रस्थान करें। महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिंधु की लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत–पुंज को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुँचा देंगी। आह चम्पा! चलो।''

चम्पा ने उसके हाथ पकड़ लिए। किसी आकस्मिक झटके ने एक पलभर के लिए दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने कहा– 'बुद्धगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरह है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।''

''तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चम्पा यहाँ रहकर में अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँ, इसमें संदेह है। आह! उन लहरों में मेरा विनाश हो जाय।' महानाविक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा– तुम अकेली यहाँ क्या कारोगी ?

''पहले विचार था कि कभी–कभी इस द्वीप–स्तंभ पर से आलोक जला कर अपने पिता की समाधि का इस जल से अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाशदीप।''

7

एक दिन स्वर्ण रहस्य के प्रभात में चम्पा ने अपने दीप स्तंभ पर से देखा–सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चम्पा का उपकूल छोड़कर पश्चिम–उत्तर की ओर महा जल व्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चम्पा आजीवन उस दीप– स्तंम्भ में आलोक जलाती रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन, दीपनिवासी, उस माया–ममता और स्नेह–सेवा की देवी की समाधि–सदृश पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

बोध प्रश्न 2

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   क) चम्पा के पिता बणिक .... के यहाँ .... का कार्य करते थे।

   ख) बुद्धगुप्त .... का एक ....था।

   ग) चम्पा का घर .... के तट पर था।

   घ) चम्पा के पिता ने .... दस्युओं को मारकर .... ली।

   ङ) वह .... की एक क्षत्रिय बालिका थी।

7.4 कथा सार

कहानी में दो प्रमुख पात्र हैं– चम्पा और बुद्धगुप्त। दोनों समुद्र में एक जहाज पर बंदी बनाए हुए हैं। दोनों के हाथ–पाँव बँधे हुए हैं फिर भी वे प्रयासपूर्वक अपने बंधन खोलकर मुक्त हो जाते हैं। फिर नाव के नायक से बुद्धगुप्त का द्वंद्व युद्ध होता है, जिसमें बुद्धगुप्त विजयी होता है। अब नाव पर बुद्धगुप्त का अधिकार हो जाता है। नाव धीरे–धीरे एक द्वीप के पास पहुँचती है। द्वीप का कोई नाम न होने के कारण वे उसका नामकरण चम्पा द्वीप करते हैं। साथ–साथ रहने के कारण और परस्पर सहयोग से युक्त होने के कारण उनके बीच स्नेह भाव जाग्रत होने लगता है। दोनों अपने पुराने अनुभव को साझा करते हैं। तब पता चलता है कि बुद्धगुप्त जलदस्यु है। चम्पा के पिता मणिभद्र के पोत में प्रहरी थे। इस पोत पर बुद्धगुप्त आक्रमण करता है। इस आक्रमण में चम्पा के पिता मारे जाते हैं। जब यह बात चम्पा को पता चलती है तो उसके मन में बदला लेने की भावना जाग्रत होती है। इस बीच दोनों के हृदय में प्रेम भाव पल्लवित होने लगता है। अंततः चम्पा मानसिक अंतर्द्वंद्व में अपना हथियार फेंक देती है, परन्तु बुद्धगुप्त से विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। प्रेम और प्रतिशोध के द्वंद्व के चलते वह एकाकी जीवन का वरण करती है और इस द्वीप में रहकर जीवनभर 'आकाशदीप' जलाती रहती है ताकि नाविक को रास्ता मिलता रहे। बुद्धगुप्त निराश होकर द्वीप छोड़ देता है और भारत भूमि में चला जाता है।

7.5 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1:

पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मार कर जल समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से बंदी बना दी गई। चम्पा रोष सेजल रही थी।

'मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ, चम्पा परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी ?''

''मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाय।'' चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थी। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या–व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र वक्ष पर विलम्बमयी राग रज्जित संध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुंतल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दांत दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह थी कोमलता!

संदर्भ :

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद की चर्चित कहानी 'आकाशदीप' से लिया गया है। इस कहानी में चम्पा और बुद्धगुप्त प्रमुख पात्र हैं। एक संकटपूर्ण स्थिति में ये दोनों पात्र अपरिचित होने के बावजूद साथ–साथ संघर्ष करते हैं। दोनों बंदी होते हैं फिर दोनों प्रयासपूर्वक मुक्त हो जाते हैं। इसके बाद ये दोनों आपस में एक–दूसरे का परिचय प्राप्त करते हैं। परिचय के एक हिस्से में सबसे पहले चम्पा अपना परिचय देती है। परिचय की इस प्रक्रिया में दोनों पात्रों के अतीत की जानकारी पाठकों को प्राप्त होती है।

व्याख्या :

इन दोनों पात्रों को मणिभद्र बंदी बनाता है। मुक्त होने के बाद चम्पा बताती है कि उसके पिता मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे और इसी जहाज पर रहते थे। उसकी माँ का देहावसान हो गया था इसलिए वह नावों पर ही पिता के साथ रहती थी और यह कोई छोटा समय नहीं था। आठ वर्ष तक यह समुद्र ही उसका घर रहा है। वह धरती पर नहीं जा पाती थी। चम्पा अपने जीवन में घटित दुःखद घटना तथा उससे हुए परिवर्तन का संदर्भ देते हुए कहती है कि जिस समय बुद्धगुप्त ने मणिभद्र की इस नाव पर आक्रमण किया था, उस समय उसके पिता प्रहरी के रूप में उपस्थित थे। उन्होंने उन जलदस्यु का विरोध किया और सात दस्युओं को मार गिराया। इस संघर्ष में उनकी जान चली गई। और उन्होंने इसी जल में समाधि ले ली। इस घटना को अभी एक माह ही हुआ है। इस एक महीने में चम्पा इस नीले आसमान के नीचे और इस नीले समुद्र के ऊपर एक भयंकर अनन्तता में असहाय होकर रहती है। कोई उसकी सहायता करने वाला नहीं है। पिता की मृत्यु के बाद वह अनाथ हो गई और अनाथ के रूप में इस नाव में रह रही है। एक दिन नाव के मालिक मणिभद्र ने चम्पा के सामने एक घृणित प्रस्ताव रखा जो उसे अपमानजनक लगा। वह मणिभद्र से शारीरिक युद्ध तो नहीं कर सकती थी, इसलिए चम्पा ने उसे गालियाँ देकर अपने क्रोध का इजहार किया। बस उसी दिन से मणिभद्र ने चम्पा को बंदी बना लिया। और बंदी रूप में ही बाद में वह बुद्धगुप्त से मिली। यह कहते–कहते चम्पा को अपना अपमान याद आया और वह गुस्से की आग में जलने लगी।

इसके बाद बुद्धगुप्त भी अपना परिचय देता है। परिचय देते हुए वह बताता है कि वह ताम्रलिप्ति का क्षत्रिय है, परन्तु उसका दुर्भाग्य कि वह जल दस्यु बनकर अपना जीवन बिता रहा है। अर्थात् उसका काम समुद्र में आए हुए जहाजों को लूटना है। यह वह करना नहीं चाहता था, उसकी प्रकृति के अनुकूल भी नहीं था, तब भी इसे वह अपना दुर्भाग्य मानता है कि वह एक जल दस्यु है। इसके बाद वह चम्पा से पूछता है कि मणिभद्र से मुक्त होने के बाद वह क्या करेगी,उसके जीवन की क्या संभावनाएँ हैं।

इसके उत्तर में चम्पा कहती है कि आगे वह क्या करेगी यह तो उसके लिए अदृश्य है। वह स्पष्ट देख नहीं सकती। उसी कारण से वह भविष्य की कोई योजना भी नहीं बनाती। उसे अनिर्दिष्ट ही रहने देगी। अर्थात् उसका भाग्य उसे जहाँ ले जाए, वहाँ वह चली जाएगी। यह कहते–कहते चम्पा की आंखों में निरुद्देश्यता दिखाई देने लगी। उसकी आँखों में किसी प्रकार की लालसा, कामना, इच्छा दिखाई नहीं देती, वे खाली और उदास थी। चम्पा की इस पवित्र सफेदी में बालकों के समान विश्वास था। वह अपने अनिश्चित भविष्य से डरी हुई नहीं थी। आगे लेखक कहता है कि चम्पा के इस रूप को देखकर हत्या का व्यवसाय करने वाला दस्यु भी भय से काँपने लगा। चम्पा के इस निडर सौंदर्य को देखकर बुद्धगुप्त के मन में यौवन की पहली लहर जगने लगी। अर्थात् बुद्धगुप्त को चम्पा का पवित्र सौंदर्य प्रभावित करने लगा। एक रोमांटिक वातावरण का सृजन करते हुए लेखक कहता है कि इधर समुद्र के सीने पर लाल रंग से डूबी हुई संध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत बाल इसकी पीठ पर बिखरे हुए थे। बुद्धगुप्त जैसे दुर्दांत दस्यु के मन पर यह महिमा से युक्त युवा बालिका अलौकिक छाने लगी। उसे अपने हृदय में कुछ नवीनता का पता चला। वह दुर्दांत जल दस्यु के रूप में जाना जाता था परन्तु आज उसे जिस नवीनता का ज्ञान हुआ वह यह कि हृदय में कोमल तथा मधुर भावनाएँ भी होती हैं, संवेदनशीलता भी होती है। उसके मन में चम्पा के प्रति प्रेम की कोमलता का भाव उदित होने लगा।

यह संवाद और बातचीत दोनों अपरिचित पात्रों के बीच विश्वास जगाने के लिए निर्मित किया गया है। दोनों एक दूसरे को पसंद करने लगे हैं, दोनों एक दूसरे पर विश्वास करने लगे हैं, आपस में किसी तरह की कोई कटुता नहीं है। दोनों निडर होकर अपने बारे में सच बता रहे हैं। अपनी छवि बिगड़ने का, नुकसान हो जाने का, धोखा देने का कोई भाव इनमें नहीं आता। इसी से आगे चलकर कहानी में चम्पा और बुद्धगुप्त दोनों आपस में प्रेम करने लगते हैं। हालाँकि कोई भी पात्र प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं करता और वे दोनों ही एक दूसरे की मर्यादा का पूरा ध्यान रखते हैं और सम्मान करते हैं।

बुद्धगुप्त शक्तिशाली है, जलदस्यु है लेकिन चम्पा उस पर विश्वास करती है। यही कारण है कि उसके मन में ऐसा ख्याल नहीं आता कि बुद्धगुप्त उस पर आक्रमण भी कर सकता है या वह भी मणिभद्र की तरह कोई घृणित प्रस्ताव रख सकता है। न तो यह भाव बुद्धगुप्त के हृदय में आता है और न ही चम्पा के मन में।

विशेष :

1. यहाँ सहज आत्मीय संवाद के माध्यम से बुद्धगुप्त और चम्पा को एक दूसरे से परिचित कराया गया है।
2. यह संवाद दोनों के मध्य विश्वास जगाता है और दोनों की भावनाओं और विचारों को व्याख्याचित करता है।

उद्धरण 2:

चम्पा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करतां पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कराने लगी। पशु–बल और धन के उपासक के मन

में किसी शांत और एकांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका!

संदर्भ :

यहाँ पर बुद्धगुप्त और चम्पा कई दिनों तक इस द्वीप में साथ–साथ रहते हैं। बुद्धगुप्त के मन में चम्पा को प्राप्त करने की भावना जाग्रत होती है, लेकिन वह चम्पा को जरा भी अपमानित करना नहीं चाहता। चम्पा उसकी किसी बात का बुरा माने यह उसे असह्य है। इसलिए अत्यंत सावधानी से एक दार्शनिक भूमिका बाँधकर वह चम्पा से वार्तालाप करता है।

व्याख्या :

बुद्धगुप्त कहता है कि मैं तो जलदस्यु हूँ, हत्या व्यवसायी होने के कारण ईश्वर को नहीं मानता, पाप–पुण्य में मेरा कोई विश्वास नहीं है। दया–धर्म भी कभी समझ नहीं आया। मैं स्वर्ग–नर्क की धारणा में भी विश्वास नहीं करता जो एक सामान्य भारतीय की मानसिकता होती है। लेकिन मुझे अपने ही हृदय के एक दुर्बल अंश से स्नेह हो गया जो श्रद्धा से संचालित है (क्योंकि वह प्रेम, दया, श्रद्धा आदि को मनुष्य की कमज़ोरी/दुर्बलता समझता रहा है)। उसके जीवन में चम्पा न जाने कहाँ से आसमान से भटकी तारिका के समान उदित हो गई। अर्थात वह न मालूम कैसे बुद्धगुप्त के सूने हृदय में प्रविष्ट हो गई और एक कोमल रेखा बनकर मुस्कुराने लगी। बुद्धगुप्त आगे कहता है कि मैं शक्ति का उपासक हूँ, धन का उपासक हूँ, भावनाओं से कोई संबंध नहीं है फिर भी मेरे मन में यह कोमल और सुंदर इच्छा कैसे हँसने लगी। इस तरह बुद्धगुप्त ने चम्पा के प्रति अपने प्रेम भाव को बहुत शालीन और मार्यादित ढंग से अभिव्यक्त कर दिया। यह अभिव्यक्ति प्रेम के निवेदन की तरह है। इस निवेदन को स्वीकारने या अस्वीकार करने का निर्णय चम्पा को करना है। बुद्धगुप्त यहाँ प्रार्थी की मुद्रा में खड़ा है। आगे वह कहता है कि चम्पा हमारे पास असंख्य धन राशि है और बहुत सारी नावें भी हैं, हम नावों में उस धन राशि को भरकर भारत भूमि की ओर चल पडते हैं और वहाँ तुम राज रानी की तरह रहोगी। बुद्धगुप्त की इच्छा है कि आज ही उनका विवाह हो और कल वे भारत भूमि के लिए प्रस्थान करें। यदि चम्पा सहमत हो तो यह हो सकता है। बुद्धगुप्त स्वयं मानता है कि वह महानाविक है और उसकी आज्ञा समुद्र की लहरें भी मानती हैं। बाकी छोटी–मोटी विघ्न बाधा तो सामने आनी ही नहीं है। केवल चम्पा की स्वीकृति की आवश्यकता है अर्थात् जिस जलदस्यु का कहा प्रकृति तक मानती है वह चम्पा के समक्ष निवेदन की मुद्रा में है। जिसे दया–धर्म से कोई वास्ता नहीं था और जो केवल पशु–बल और धन में विश्वास रखता था उसके हृदय में भी कोमल भावनाएँ जगाने में सक्षम हुई है।

विशेष :

1. जिस तरह इस अंश में बुद्धगुप्त अपने प्रेम का निवेदन करता है और निर्णय चम्पा पर छोड़ देता है और इस निवेदन में चम्पा की गरिमा का बराबर ध्यान रखा गया है।

2. चरित्रों की चारित्रिक विशेषताएँ भी यहाँ प्रकट हुई हैं। जलदस्यु होकर भी बुद्धगुप्त शालीनता और संबंधों की मर्यादा का ध्यान रखता है। ,

7.6 सारांश

जयशंकर प्रसाद छायावाद के चार स्तम्भों में एक हैं। हिंदी, उर्दू, संस्कृत और फारसी का गंभीर अध्येता थे। उनकी विद्वत्ता और गहन अध्ययन उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त होता है। उन्होंने कुल 72 कहानियाँ लिखीं, जिनमें 'आकाशदीप' महत्वपूर्ण कहानी है और 'आकाशदीप' कथा संग्रह में संकलित है। उन्होंने हिंदी में प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा के साथ–साथ रोमांटिक भावुकतापूर्ण कहानियों का सृजन किया। 'आकाशदीप' कहानी भी अपूर्ण प्रेम की रोमांटिक भावुकतापूर्ण नायिका प्रधान कहानी है। कहानी का वाचन करने के उपरांत आप कहानी के मूल अभिप्राय को जान–समझ गए होंगे। कथासार के अंतर्गत अपने कहानी के मूल कथ्य को भी समझ लिया है।

7.7 कठिन शब्दों के अर्थ

1. प्रहरी – रक्षक
2. हर्षातिरेक – प्रसन्नता
3. तारक – तारे
4. रज्जु – रस्सी
6. अतल – गहरे
7. त्वरित – तेज़
8. लाघव – फुर्ती
9. निविड़तम – सघन अंधकार
10. तारिका – तारे
11. रोष – क्रोध
12. धवल – श्वेत
13. कुंतल – बाल

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 क, ख, एवं ग के उत्तर के लिए कहानी को ध्यान से वाचन करें।

2. (क) बुद्धगुप्त (ख) दस, प्रहरी

3. (क) मणिभद्र, प्रहरी, (ख) ताम्रलिप्ति, (ग) जाह्नवी, (घ) सात, जलसमाधि,

(ङ) चम्पा–नगरी

इकाई 8 'आकाशदीप' की अंतर्वस्तु और विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 कथानक एवं अंतर्वस्तु

8.3 चरित्र चित्रण

8.3.1 सहयोगी पात्र

8.3.2 प्रमुख पात्र

8.4 कहानी का परिवेश

8.5 संरचना शिल्प

8.5.1 शिल्प

8.5.2 भाषा

8.6 सारांश

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

यह इकाई जयशंकर प्रसाद की महत्वपूर्ण कहानी 'आकाशदीप' के विश्लेषण और मूल्यांकन पर आधारित है :

- 'आकाशदीप' कहानी का कथासार जान सकेंगे,
- 'आकाशदीप' के कथानक के माध्यम से उसकी अंतर्वस्तु को समझ सकेंगे,
- कहानी में आए हुए पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं से परिचित हो सकेंगे; और
- 'आकाशदीप' की संरचना और लेखक की जीवन दृष्टि को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

'आकाशदीप' जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित कहानी है। इस कहानी में प्रसाद की स्वच्छंदतावादी दृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है। यह कहानी 'उसने कहा था' की परंपरा की प्रेम कहानी है। यह नायिका प्रधान कहानी है। इस कहानी की नायिका चम्पा है। इसमें समुद्री जीवन के परिवेश को ऐतिहासिक सौंदर्य में चित्रित किया गया है।

8.2 कथानक एवं अंतर्वस्तु

'आकाशदीप' कहानी को प्रसाद जी ने बहुत कलात्मकता से गूँथा है। इस छोटी–सी कथा को प्रसाद ने सात भागों में बाँटकर लिखा है।

कहानी का प्रारंभ बहुत नाटकीय ढंग से होता है। कहानी का पहला संवाद चम्पा बोलती है– 'बंदी'! दूसरा बोलता है– 'क्या है? सोने दो।' यह दो नितांत अपरिचित

एक दूसरे से अनजान व्यक्तियों का संवाद है, जो अज्ञात कारणों से एक ही परिस्थिति में पड़े हुए हैं–अर्थात् बंदी हैं। बंदियों की एकमात्र कामना होती है कि बंधन मुक्त हो जाएँ। ऐसी विषम परिस्थिति में भी दूसरा बंदी कहता है, 'सोने दो'। इसके बावजूद पहला बंदी निराश नहीं होता। संवाद आगे चलता है। इसी से कहानी भी आगे चलने लगती है। इस संवाद से पता चलता है कि पहला बंदी दुस्साहसी है और दूसरा बंदी आत्मविश्वास से परिपूर्ण है। उसे मुक्त होने के लिए कोई याचना नहीं करनी है। किसी का उपकार भी नहीं लेना है। इसीलिए वह आत्मविश्वास से बोलता है। यह भी पता चलता है कि बंदी समझदार है, अनुभवी है। वह जानता है कि जो मुझे मुक्त करने की सलाह दे रहा है, वह भी मेरी ही परिस्थिति में पड़ा हुआ है। अतः वह अगले प्रस्ताव की प्रतीक्षा करता है। इसलिए फिर वैसा ही निश्चिंत वाक्य बोलता है– ''बड़ी शीत है, कहीं से एक कंबल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।''

धीरे–धीरे दोनों संवाद और सहमति की स्थिति में आते हैं और दोनों के साथ–साथ पाठक को भी पता चलता है कि नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं। आँधी आने की संभावना है। पहला बंदी कहता है कि ''आज मेरे बंधन शिथिल हैं। फिर संवाद में एक वाक्य– 'शस्त्र मिलेगा' कहा जाता है और इस तरह आगे की रूपरेखा तय हो जाती है। यह नाव पोत से जुड़ी हुई है। उसे एक रस्सी से जोड़कर रखा गया है। अब पोत से जुड़ी हुई रस्सी को काटना है। रहस्य और रोमांच का वातावरण है। दोनों बंदी आपस में टकराने लगे और एक ने दूसरे के बंधन खोल दिए। अब दोनों मुक्त थे। हर्षातिरेक में दोनों गले लग गए। इतने में दूसरे बंदी को और पाठक को भी पहली बार पता चलता है कि पहला बंदी स्त्री है। यहाँ पहला बंदी कहता है, क्या स्त्री होना कोई पाप है ? फिर पहला बंदी अर्थात् चम्पा, नायक का कृपाण ले आती है। इतने में आँधी आ जाती है। आँधी की इस भागदौड़ में दूसरा बंदी कुशलता से पोत से जुड़ी हुई रस्सी को काट देता है। अब पोत से नाव अलग हो जाती है। अर्थात् उन्हें बंदी बनाने वाले लोग पोत में ही रह जाते हैं। नाव में यही 10–12 लोग रह गए। कहानी का पहला भाग यहीं समाप्त हो जाता है।

कहानी के खंड 2 का आरंभ सूर्योदय से होता है। अब नाविकों को पता चलता है कि पोत का कहीं पता नहीं है और बंदी मुक्त है। यहाँ पहली बार दूसरे बंदी का नाम पता चलता है– बुद्धगुप्त। नाव का नायक उसे पुनः बंदी बनाना चाहता है। फिर दोनों में द्वंद्व युद्ध होता है। प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुसार द्वंद्व युद्ध में दो लोग लड़ते हैं। शेष लोग अलग खड़े रहते हैं। कोई उसमें दखल नहीं देता। इस द्वंद्व युद्ध में बुद्धगुप्त विजयी होता है और नाव का स्वामी बन जाता है। नायक को जीवनदान देकर वह उसे सेवक बना लेता है। इस द्वंद्व युद्ध में बुद्धगुप्त को भी घायल तो होना था। ''चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना विहीन कर दिया।'' इस तरह दोनों बंदियों (अर्थात् बुद्धगुप्त और चम्पा) का रिश्ता शनैः शनै गहरा होने लगता है।

कहानी के खंड 3 में दोनों बंदी अपने पिछले जीवन का परिचय देते हैं। यह उनका पहला औपचारिक परिचय है। दोनों यह जानना चाहते हैं कि वे बंदी कैसे बने या उन्हें बंदी क्यों बनाया गया ? पात्र अब अपरिचय से परिचय की दिशा में आगे बढ़ते हैं। चम्पा बताती है कि वह चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका है। पिता पोत के मालिक मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माँ की मृत्यु के बाद वह पिता के साथ पोत में ही रहने लगी। जलदस्युओं द्वारा पिता की हत्या के बाद मणिभद्र ने उसे एक घृणित प्रस्ताव दिया। चम्पा ने प्रतिरोध किया और उसे गालियाँ दीं। और फिर

मणिभद्र ने चम्पा को बंदी बना लिया। इधर बुद्धगुप्त बताता है कि वह ताम्रलिप्ति का क्षत्रिय है, जो दुर्भाग्य से जलदस्यु बन गया है। इस स्नेहिल संभाषण के बाद दोनों एक नए द्वीप में उतरे। इस द्वीप का नामकरण चम्पा द्वीप कर दिया गया। चम्पा का शेष जीवन इसी द्वीप पर बीतने वाला था।

इसके बाद कहानी में पाँच बरस का अंतराल आता है। कहानी के खंड 4 में चम्पा आकाशदीप जला रही है। फिर कहीं से घूमता हुआ बुद्धगुप्त आ जाता है। वह चम्पा के आकाशदीप जलाने को लेकर थोड़ी निष्ठुर टिप्पणी करता है–''तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो।'' प्रेम के इस प्रवाह के बीच भी चम्पा को लगता है कि बुद्धगुप्त का हृदय करुणाविहीन है। उसमें अभी कोमलता नहीं है और वह बुद्धगुप्त को कहती है– ''तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी है परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है।'' चम्पा को अपनी माँ की याद आती है। माँ मिट्‌टी का दीपक बाँस की पिटारी में रखकर नदी भागीरथी के तट पर ऊँचा टाँग देती थी और भगवान से प्रार्थना करती थी कि ''मेरे पथभ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।'' अपने पिता की मृत्यु के कारण बुद्धगुप्त की टिप्पणी से चम्पा को क्रोध आता है और बुद्धगुप्त पहली बार चम्पा का रौद्र रूप देखता है।

कहानी के खंड 5 में चम्पा, जया के साथ तट पर खड़ी है। शाम का सुहाना समय है। वे दोनों एक छोटी–सी नौका में बैठकर समुद्र के उदास वातावरण में अपने को घुला देती है। उदास है, परन्तु खुश है। इतने में बुद्धगुप्त आता है और वह चम्पा की चिंता करते हुए कहता है कि इस नाव पर इधर घूमना सुरक्षित नहीं है। महानाविक बुद्धगुप्त जिससे बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था, वह चम्पा के सामने छल छलाई आँखों से देखता है। दोनों के बीच पुनः भावुक क्षण आता है। इस क्षण के प्रभाव से बाहर आकर चम्पा अपना कृपाण समुद्र में गिरा देती है। इस तरह वह अपने पिता के हत्यारे (बुद्धगुप्त) से बदला लेने का संकल्प त्याग देती है। प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों हुआ ? चम्पा के अनुसार, चम्पा के हृदय ने चम्पा को धोखा दिया। वह बुद्धगुप्त से प्रेम करने लगी थी। तब क्या वह बुद्धगुप्त से विवाह कर लेगी। यहाँ प्रसाद एक दार्शनिक वक्तव्य देते हैं–'मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।'' यह कहकर चम्पा रो पडत़ी है।'' प्यार और घृणा का यह द्वंद्व चम्पा के जीवन की स्थायी पीड़ा है।

खण्ड 6 में हम देखते हैं कि द्वीप में एक समारोह आयोजित हो राह है। चम्पा के पूछने पर जया उसे बताती है कि आज रानी का ब्याह है। वह जब बुद्धगुप्त से पूछती है तो बुद्धगुप्त कहता है कि यदि तुम्हारी इच्छा हो तो ऐसा हो भी सकता है। बुद्धगुप्त और चम्पा का विवाह हो सकता है। चम्पा को अपनी परिस्थिति की अनुभूति होती है कि यहाँ मैं निस्सहाय और कंगाल हूँ। मेरी सहमति–असहमति का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए महानाविक चाहे जो कर सकता है। चम्पा अपने इन भावों को अभिव्यक्त करती है। बुद्धगुप्त बराबर चम्पा को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता है कि उसने चम्पा के पिता की हत्या नहीं की थी। वे किसी दूसरे दस्यु के हाथों मारे गए थे। चम्पा को इस पर विश्वास नहीं होता।

बुद्धगुप्त तब भी निवेदन करता रहता है। वह यह भी प्रस्ताव देता है कि अब हम इस द्वीप को छोड़कर पावन भारत–भूमि में चलते हैं और वहीं सुख–पूर्वक निवास करते हैं। चम्पा कहती है कि ''मेरे लिए सब भूमि मिट्‌टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है।'' जब चम्पा से कोई सकारात्मक उत्तर नहीं मिलता है तब बुद्धगुप्त भारत जाने का

निर्णय सुना देता है और चम्पा इसी चम्पा द्वीप में रहने को अपनी नियति मान लेती है।

अंतिम खंड 7 है। सुबह–सुबह चम्पा देखती है कि नावों की एक श्रेणी चम्पा का किनारा छोड़कर भारत की ओर जा रही है। स्पष्ट है कि बुद्धगुप्त रवाना हो रहा है और चम्पा की आँखों में आँसू हैं।

यहाँ कहानी समाप्त होती है। प्रसाद जी स्पष्ट करते हैं कि यह कितनी शताब्दियों से पहले की कथा है। चम्पा इस दीप स्तंभ में आजीवन आलोक जगाती रहती है। उसके बाद भी चम्पा द्वीप वाले, चम्पा की समाधि–सदृश पूजा करते थे। एक दिन चम्पा काल के कठोर हाथों से चल बसी और उसके कुछ बरसों बाद वह द्वीप स्तंभ भी ढह जाता है।

इसी करुणा में यह कहानी समाप्त हो जाती है।

8.3 चरित्र चित्रण

इस कहानी में दो प्रमुख पात्र हैं, तथा कुछ सहयोगी पात्र हैं। सहयोगी पात्र प्रमुख पात्रों के बीच उनके चरित्र को स्पष्ट करने में सहायक की भूमिका में आते हैं। अतः प्रमुख पात्रों का परिचय पाप्त करने से पहले इन गौण पात्रों (जो सहयोगी रूप में कहानी में उपस्थित रहते हैं) से परिचित होना उपयोगी रहेगा।

8.3.1 सहयोगी पात्र

'आकाशदीप' में दो तरह के सहयोगी पात्र हैं। कुछ पात्र ऐसे हैं, जो कहानी में कभी उपस्थित नहीं होते। उनके बारे में केवल चर्चा होती है। प्रमुख पात्र उनका परिचय देते हैं। ये कथा की दृष्टि से अनुपस्थित पात्र होते हैं। इसके अलावा कुछ ऐसे पात्र भी सहयोगी के रूप में आते हैं जो कहानी में विभिन्न अवसरों पर उपस्थित रहते हैं।

क) अनुपस्थित सहयोगी पात्र

चम्पा के पिता अनुपस्थित सहयोगी पात्र हैं। इनका जिक्र कहानी में बार–बार होता है। चम्पा उनकी स्मृति को सँजोए रखती है। चम्पा के माध्यम से पता चलता है कि वे क्षत्रिय थे तथा पोत के मालिक मणिभद्र के पोत में प्रहरी के रूप में नियुक्त थे। माँ की मृत्यु के बाद चम्पा पोत में ही अपने पिता के साथ रहती थी। एक दिन जलदस्यु बुद्धगुप्त इस पोत पर आक्रमण करता है। प्रहरी के रूप में चम्पा के पिता उनका मुकाबला करते हैं और सात दस्युओं को मारकर जल–समाधि ले लेते हैं। चम्पा को लगता था कि उसके पिता की हत्या बुद्धगुप्त ने की थी, इसलिए बुद्धगुप्त के प्रति उसके हृदय में प्रेम होने पर भी वह पिता के हत्यारे के साथ वह विवाह नहीं कर सकती। बुद्धगुप्त बराबर यह समझाने की कोशिश करता है कि उसने चम्पा के पिता की हत्या नहीं की। किसी अन्य दस्यु के हाथों वे मारे गए। इस तरह इन दोनों के रिश्तों का द्वंद्व इस पात्र, यानी चम्पा के पिता के कारण होता है। और इसी कारण अंततः चम्पा एकाकी जीवन का वरण करती है। वह बुद्धगुप्त से प्रेम करती है किंतु पिता के 'हत्यारे' बुद्धगुप्त से घृणा करती है। प्रेम और घृणा के इस द्वंद्व का मूल कारण कहानी में चम्पा के पिता ही दृष्टिगत होते हैं।

चंपा की माँ भी अनुपस्थित पात्र की श्रेणी में आती हैं। चम्पा अपनी माँ की संवेदनशीलता का जिक्र करती है। चम्पा के पिता अपनी नौकरी के सिलसिले में समुद्री जहाजों पर ही रहते थे। जब वे जहाज पर होते तो कभी–कभी आँधी–तूफान आता ही रहता था। उस आँधी–तूफान में नाविकों को कुछ भी दिखाई नहीं देता था। वे प्रकाश की हल्की–सी किरण के लिए तरस जाते थे। ऐसे समय में चम्पा की माँ मिट्टी का दीपक बनाकर बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। चम्पा अपनी माँ के प्रति करुण भावनाओं से युक्त होकर बताती है कि उस समय मेरी माँ भगवान से प्रार्थना करती रहती थी कि ''भगवान् मेरे पथ–भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।'' उस समय चम्पा बच्ची थी परन्तु यह चम्पा ने स्वयं देखा था और अब भी यह उसकी स्मृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। बरसों बाद जब पिता वापिस लौटते तो कहते कि ''तेरी (चम्पा की माँ) की प्रार्थना से भगवान ने मेरी रक्षा कर दी है। यह सुनकर माँ को अतीव प्रसन्नता होती।'' माँ की भावनाओं को चम्पा आज भी महसूस कर रही है। आज चम्पा, चम्पा द्वीप में 'आकाशदीप' जला रही है, वह उसी माँ की पुण्य–स्मृति है। इस तरह अनुपस्थित माँ चम्पा की स्मृति में पुनः जीवित होकर कहानी में प्रवेश कर जाती है।

इसी तरह का अनुपस्थित पात्र **मणिभद्र** है। वह उस पोत का मालिक है, जिसमें चम्पा के पिता प्रहरी का काम करते थे और जलदस्यु द्वारा मार डाले गए थे। कहानी के प्रारंभ में चम्पा और बुद्धगुप्त दोनों बंदी दिखाई देते हैं। उन्हें इस मणिभद्र ने ही बंदी बना रखा था। चम्पा द्वारा कहानी में यह जानकारी पाठक को होती है कि मणिभद्र ने चम्पा के सामने घृणित प्रस्ताव रखा, उस प्रस्ताव को चम्पा ने स्वीकार नहीं किया, फलतः वह बंदी बना ली गई। अब बुद्धगुप्त तो जलदस्यु ही था। उसने पोत पर आक्रमण किया हो और मणिभद्र ने उसे पकड़कर बंदी बना लिया होगा, इसकी हम कल्पना कर सकते हैं। प्रसाद जी ने बुद्धगुप्त के बंदी बनाए जाने को पाठकों की कल्पना पर ही छोड़ दिया।

ख) उपस्थित सहयोगी पात्र

नाव में सवार 10–12 नाविक और उनका नायक सहयोगी पात्र हैं। नाविक तो सिर्फ उपस्थित रहते हैं। उनकी कहानी में कोई भूमिका नहीं होती। उनका नायक अलबत्ता सक्रिय पात्र है। उसने जब सुबह–सुबह देखा कि जिस पोत से नाव बँधी हुई थी, वह पोत कहीं दिखाई नहीं दे रहा है और दोनों बंदी स्वतंत्र हैं। तब वह बुद्धगुप्त से पूछता है कि ''तुम कैसे मुक्त हुए ? मैं तुम्हें फिर बंदी बनाऊँगा।'' नायक, मणिभद्र का नौकर है। अतः वह अपने मालिक के हित की दृष्टि से सोचता है। पोत की रस्सी काट देने के कारण पोत अवश्य ही डूब गया होगा। उसी में मणिभद्र भी नहीं बचा होगा। अतः बुद्धगुप्त घोषित करता है कि वह अब इस नाव का मालिक है। पुनः बंदी बनाने के इस प्रयास के बीच बुद्धगुप्त और नायक के बीच द्वंद्व युद्ध होता है। इस युद्ध को चम्पा देख रही होती है। लेखक दोनों के युद्ध का वर्णन करता है ''दोनों कुशल, दोनों त्वरित गति वाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दांतों में पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिए। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गए। परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण भिक्षा माँगने लगी।'' इस युद्ध में हम देखते हैं कि नायक कमजोर नहीं था। वह प्राण–पण से लड़ रहा था। जब पराजित हो गया तो उसने समर्पण कर

दिया और वरुणदेव की शपथ लेकर कहा कि कभी भी विश्वासघात नहीं करूँगा। जब उसने मणिभद्र के साथ भी कोई विश्वासघात नहीं किया तो बुद्धगुप्त के साथ भी क्यों करता ? इस तरह आगे चलकर वह बुद्धगुप्त का सहयोगी बना।

इसके अलावा एक आदिवासी युवती जया भी एक सहायक पात्र है। जो अधिकांश समय चम्पा के साथ रहती है तथा उसकी आज्ञा का पालन करती है। वह ज्यादा बोलती नहीं केवल उसकी उपस्थिति दिखाई देती है। जया के चरित्र का अधिक विकास कहानी में दृष्टिगत नहीं होता।

बोध प्रश्न 1

1. उपर्युक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   क) कहानी के खंड 2 का आरम्भ .... से होता है।

   ख) चम्पा की माँ मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में रखकर .... के तट पर ऊँचा टाँग देती थी।

   ग) इस कहानी में दो प्रमुख पात्र .... एवं .... हैं।

   घ) कहानी में .... युवती .... है।

2. चम्पा की माँ की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए। (तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

   ....

   ....

   ....

3. 'आकाशदीप' कहानी का सार अपने शब्दों में लिखिए। (बारह पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

4. चम्पा बुद्धगुप्त से प्रेम करती थी, फिर भी उसने बुद्धगुप्त से विवाह का प्रस्ताव क्यों ठुकरा दिया ? (तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....

....

....

8.3.2 प्रमुख पात्र

इस कहानी में दो प्रमुख पात्र हैं–बुद्धगुप्त और चम्पा। संपूर्ण कहानी इन दोनों के रिश्तों के बनते–बिगड़ते स्वरूप की कथा कहती है। आलोचकों का विचार है कि 'आकाशदीप' एक प्रेम कहानी है। प्रेम कहानी का नायक यह बुद्धगुप्त है। बुद्धगुप्त एक जलदस्यु है। समुद्री लुटेरा है। उसका काम समुद्र में आने जाने वाले जहाजों को लूटना होता है। यह लूटपाट उसका काम है, व्यवसाय है। इसमें मारपीट और हत्या तो होती ही है। लूटपाट, युद्ध और हत्या के बिना किसी जहाज को लूटा ही नहीं जा सकता।

बुद्धगुप्त

आइए पहले बुद्धगुप्त के चरित्र को हम समझने की कोशिश करते हैं।

बलवान

बुद्धगुप्त शारीरिक रूप से बलवान है। इसी शक्ति के कारण वह पोत से जुड़ी हुई नाव की रस्सी काट देता है। यह सरल काम नहीं है। चलती हुई नाव में यह कार्य दुष्कर है। इसी तरह बुद्धगुप्त नाव के नायक से द्वंद्व युद्ध करता है। प्रसाद जी ने उसका वर्णन किया है। इस द्वंद्व युद्ध में वह अपने लाघव से उसे पराजित कर देता है और वह नाव का मालिक बन जाता है। धीरे–धीरे वह समुद्री व्यापार पर नियंत्रण भी कर लेता है। इस सब में उसकी शारीरिक शक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

साहस और आत्मविश्वास

बुद्धगुप्त साहसी और निडर है। उसका आत्मविश्वास उसके प्रत्येक कार्य में दिखाई देता है। कहानी के प्रारंभ में वह बंदी है फिर भी मुक्त होने की संभावना से उत्साहित नहीं होता। वह इस भाव से बंदी बना हुआ है कि जो भी परिस्थितियाँ आएँगी, उनसे वह निपट लेगा। चम्पा के आरंभिक संवादों में हम उसका यह रूप देख सकते हैं।

''बंदी!''

''क्या है ? सोने दो।''

''मुक्त होना चाहते हो ?''

''अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।''

''फिर अवसर न मिलेगा।''

''बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।''

यह संवाद बुद्धगुप्त की निश्चिंतता और आत्मविश्वास का द्योतक है। उसे अपने बाहुबल पर गर्व भी है। वह जानता है कि वह स्वयं को बंधन मुक्त तो कर ही लेगा।

नाव की रस्सी काट देने के बाद वह चम्पा के साथ नाव में है। नाव में 10–12 नाविक और एक उनका नायक है। ऐसी परिस्थिति में भी वह निडर रहता है और नायक से द्वंद्व युद्ध के लिए तैयार हो जाता है और विजय प्राप्त करता है।

जलदस्यु से महानाविक

कहानी के प्रारंभ में वह जलदस्यु है। बाद में उसके चरित्र में परिवर्तन होता है। वह दस्युवृत्ति छोड़ देता है और अब व्यापार करने लगता है। अब जावा, बाली और सुमात्रा का सारा व्यापार बुद्धगुप्त के नियंत्रण में है। प्रसाद जी यहाँ प्रकारांतर से संकेत करते हैं कि समुद्री व्यापार पर पूर्व जलदस्युओं का आधिपत्य हो जाता है। अब तो स्थिति यह है कि यह 'महानाविक' जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था, बुद्धगुप्त है। वह स्वयं एक बार कहता है कि ''महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिंधु की लहरें मानती हैं।''

प्रेमी रूप में

कहानी में बुद्धगुप्त चम्पा से प्रेम करता है। चम्पा के हृदय में प्रेम शनैःशनैः बुद्धगुप्त की ईमानदारी और सहृदयता से पैदा होता है। आपस में एक दूसरे से परिचय के बाद बुद्धगुप्त चम्पा से पूछता है कि मुक्त होने के बाद वह क्या करेगी ? चम्पा बोलने लगती है और बुद्धगुप्त उसे पहली बार निहार रहा है ''मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाए।'' चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थी। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपंगों में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक संभ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। चम्पा के असंयत कुंतल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दांत दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका। वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह थी–कोमलता।'' इस कोमलता का जन्म बुद्धगुप्त के मन में भी जागता है। वह प्रेम–भावना का महत्व समझने लगता है। क्रूर तथा धन–लोभी दस्यु के हृदय में भी 'प्रेम', कोमलता का संचार कर देता है।

प्रसाद जी उसे समुद्री लुटेरा नहीं कहते। जलदस्यु कहते हैं। चम्पा भी उसे प्रेम से जलदस्यु ही कहती है। इसी शब्द से उसे याद करती है। इस तत्सम शब्द ने उसकी आक्रामकता का थोड़ा शांत कर दिया है। वह चम्पा से प्रेम करता है। उसे पाना चाहता है। निर्जन द्वीप में जब उनकी नाव पहुँचती है तब वह उस द्वीप का नामकरण भी 'चम्पा द्वीप' करता है। वह चम्पा से विवाह करना चाहता है। लेकिन चम्पा का वरण करने के लिए कोई जोर–जबर्दस्ती नहीं करता। वह कहता है, ''चम्पा मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कुराने लगी। पशु–बल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और एकांत कामना की हँसी खिल खिलाने लगी, पर मैं न हँस सका।'' वह चाहता है कि अब दोनों अर्थात् चम्पा और बुद्धगुप्त, सारी संपत्ति लेकर भारत भूमि चलें। चम्पा इनकार कर देती है, तब भी वह शांत रहता है। वह बेमन से भारत चला जाता है और चम्पा यहाँ 'चम्पा द्वीप' में ही रह जाती है। यह चम्पा जीवन भर उसके हृदयेश्वरी रही, यह कहने की प्रसाद जी कोई आवश्यकता महसूस नहीं करते।

चम्पा का चरित्र

चम्पा क्षत्रिय बालिका है। चम्पा के पिता मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। कहानी में जब चम्पा आती है, तब तक उसके माता–पिता की मृत्यु हो चुकी है। उसके किसी भाई–बहिन या नाते–रिश्तेदार का जिक्र भी कहानी में नहीं आता। वह युवा है, इकलौती है और अविवाहित है। अपने कर्मों के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। वह किसी से भी कोई सहायता नहीं लेना चाहती और सलाह या आदेश की अपेक्षा भी नहीं करती। वह स्वयं ही मणिभद्र के घृणित प्रस्ताव को ठुकरा कर और उसे अपमानित कर बंदी बन जाने का निर्णय लेती है। बुद्धगुप्त के प्रणय–प्रस्ताव को दरकिनार करके इसी द्वीप में एकाकी जीवन बिताने का निर्णय भी वह स्वयं लेती है। कहने का अर्थ यह है कि वह भावनात्मक रूप से आत्मनिर्भर है।

चम्पा इस कहानी की नायिका है। हालाँकि बुद्धगुप्त को हम इस कहानी का नायक कह सकते हैं। तब भी कहानी के रचनात्मक अंतर्द्वंद्व में बुद्धगुप्त भी सहायक पात्र है। सारा भावात्मक आलोड़न चम्पा के हृदय में ही घटित होता है। बुद्धगुप्त तो केवल कारण मात्र है।

साहसी

चम्पा निडर और साहसी पात्र है। जब उसे बंदी बना लिया जाता है तो वह अपने भाग्य को स्वीकार नहीं करती अपितु, संघर्ष करती है। जहाँ कहीं सहायक मिलने की संभावना नहीं होती, वहाँ सहायक खोजती है। एक अनजान बंदी से चर्चा करके उसे संघर्ष के लिए तैयार करती है। चारों तरफ शत्रु हैं, पोत पर मणिभद्र है। नाव में दस नाविक सवार हैं, उनका एक नायक भी है, तब भी वह मुक्त होने के लिए खड़ी होती है। बुद्धगुप्त को तैयार करती है। मुक्त होने के बाद बुद्धगुप्त जब उससे पूछता है कि अब तुम क्या करोगी ? तब वह उसी साहस और निडरता से उत्तर देती है कि "मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाय।" यह उसका भाग्यवाद नहीं है। यह उसका साहस और गहन आत्मविश्वास है कि जो भी परिस्थितियाँ होंगी, उनका वह सामना करेगी और उनसे निपट लेगी।

ईमानदार और नैतिक

चम्पा कहीं छल नहीं करती। वह नैतिक जीवन जीती है। मणिभद्र ने जब उसके समक्ष अनैतिक प्रस्ताव रखा, तो उसने वह प्रस्ताव ठुकरा दिया। यदि उसे अनैतिक जीवन जीना होता तो ऐसी विकट परिस्थितियों में वह उसका प्रस्ताव मानने के लिए विवश हो जाती। परन्तु उसने यह नहीं किया। इसी तरह जब बुद्धगुप्त ने उससे विवाह का प्रस्ताव रखा और भारत चलने का आग्रह किया तो उसने इंकार कर दिया, क्योंकि वह ऐसे किसी व्यक्ति के साथ आनंदमय जीवन कैसे बिता सकती है, जो उसके पिता की हत्या का उत्तरदायी है। यह चम्पा की दृष्टि से नैतिक नहीं है। मन में बुद्धगुप्त के लिए घृणा रखते हुए उससे प्रेम का अभिनय वह कैसे कर सकती है, इसलिए वह यह प्रस्ताव ठुकरा देती है।

चम्पा बुद्धगुप्त से प्रेम करती है, करने लगती है, यह प्रेम उसके हृदय में धीरे–धीरे पनपता है। पहली बार बंधनमुक्त होने के बाद हर्षातिरेक में बुद्धगुप्त ने चम्पा को गले लगाया, तब वह स्त्री चेतना से मुक्त थी। वह मनुष्य थी और मनुष्य स्त्री या पुरुष नहीं होता। इसके बाद चम्पा, बुद्धगुप्त और नाव के नायक के द्वंद्व युद्ध को देखती है। चम्पा भय और विस्मय से इस युद्ध को देखती है। युद्ध के बाद चम्पा ने बुद्धगुप्त के

''समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना विहीन किया।'' यह भी मानवीय सहयोग ही माना जाएगा, क्योंकि बुद्धगुप्त चम्पा के पक्ष में इस युद्ध में भाग ले रहा था। चम्पा चाहती थी कि बुद्धगुप्त इसमें विजयी हो, तभी उसे भी मुक्ति मिल सकेगी। धीरे–धीरे चम्पा के हृदय में बुद्धगुप्त के प्रति स्नेह जाग्रत होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या एक जलदस्यु से प्रेम करना नैतिक है क्योंकि वह तो हत्या–व्यवसायी है। उसने कई लोगों की हत्या की होगी। तब ऐसे व्यक्ति से प्रेम करना कैसे नैतिक हुआ ? यहाँ प्रसाद जी स्पष्ट करते हैं कि हृदय की भावनाएँ तर्क से नहीं चलती। हृदय पर किसी का वश नहीं। चम्पा का भी वश नहीं। फिर जब जीवन ही इतना निर्दय हो तो उससे दया, माया, नैतिकता से कैसे लड़ा जा सकता है आखिर चम्पा को किस कारण बंदी बना लिया गया। उसके बंदी बनाए जाने में उसकी कोई गलती नहीं थी। फिर यदि बुद्धगुप्त भी कोमल सुकुमार होता, संवेदनशील व्यक्ति होता तो क्या वह पोत की रस्सी काट सकता था; क्या वह द्वंद्व युद्ध में नाव के नायक को नियंत्रित कर सकता था ? उसकी दबंगता और शारीरिक शक्ति से ही तो दोनों बंदी अंततः मुक्त हुए। चम्पा ने उसकी इस शक्ति का उपयोग किया। स्वयं बंधन मुक्त हुई और बुद्धगुप्त को भी मुक्त किया। चम्पा ने ही मुक्त होने की योजना बनाई। बुद्धगुप्त को प्रोत्साहित किया, वही दूसरे प्रहरी के पास जाकर कृपाण लेकर आई। उसी की प्रेरणा से (हालाँकि इसका उल्लेख नहीं मिलता है) बुद्धगुप्त ने दस्युवृति छोड़ दी। इस साहचर्यजन्य कर्म के द्वारा वह उसे पसंद करने लगती है। उसके लिए प्राण दे सकती है, परंतु पिता का हत्यारा मानते हुए उससे विवाह नहीं करती क्योंकि ऐसा करना उसे अनैतिक लगता है। वह स्पष्ट रूप से बुद्धगुप्त को बता देती है कि ''कदापि नहीं बुद्धगुप्त। जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।'' यहाँ वह बुद्धगुपत को उसके नाम या महानाविक कह कर उद्‌बोधित नहीं करती अपितु जलदस्यु कहकर ही संबोधित करती है। उसे यह भी अनुभूत होता है कि वैवाहिक जीवन में घृणा, रोष या ग्लानि का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

प्रेम का आदर्श

अपनी दृष्टि में चम्पा नैतिक जीवन जीती है। जिससे प्रेम किया, उसे धोखा नहीं दिया। प्रतिशोध में उसकी हत्या करने का कोई प्रयास नहीं किया, परंतु पिता की हत्या का दोषी मानते हुए उसको स्वीकार नहीं किया और अंततः वह एकाकी जीवन का वरण करती है और अपने उसी प्रेमी के लिए जीवन भर 'आकाशदीप' जलाती रहती है– ''आखिर हृदय ने धोखा दिया। मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।'' यह चम्पा की पीड़ा है। यही कहानी को ट्रैजिक बनाती है। यह पीड़ा स्वयं द्वारा स्वयं को दी हुई है। यह चम्पा की नैतिक चेतना से आई है। कहानी के अंत में चम्पा कहती है, बुद्धगुप्त मेरे लिए सब भूमि मिटटी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भोले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।'' एकाकी जीवन जीने का निर्णय वह स्वयं लेती है तथा सेवाभाव में स्वयं को समर्पित करने का प्रण भी।

बोध प्रश्न 2

5. चम्पा की पीड़ा का मूल कारण क्या था ? (चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....

....

....

....

6. मेरे लिए सब भूमि मिट्‌टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है।' इस कथन में चम्पा की कौन सी मानसिकता प्रकट होती है ?

....

....

....

....

7. निम्नलिखित कथनों में से सही पर (√) तथा गलत पर (×) का निशान लगाइए।

   i) बुद्धगुप्त कहाँ का निवासी था? (ताम्रलिप्ति / चम्पानगरी)

   ii) निर्जन द्वीप का क्या नामकरण किया गया– (बाली / चम्पाद्वीप)

   iii) द्वंद्व युद्ध में बुद्धगुप्त ने किसको पराजित किया ? (मणिभद्र / नाव के नायक)

8. सही उत्तर पर (√) तथा गलत पर (×) का निशान लगाइए।

   i) चम्पा के पिता चम्पानगरी के राजा थे। ( )

   ii) चम्पा बुद्धगुप्त को जलदस्यु कहकर पुकारती है। ( )

   iii) चम्पा अपनी सहायता के लिए आमतौर से जया को पुकारती है। ( )

8.4 कहानी का परिवेश

'आकाशदीप' कहानी का संपूर्ण परिवेश समुद्र का है। कहानी की सारी घटनाएँ समुद्र में पोत या नौका में घटित होती हैं। कहानी के पात्र जब अपने पिछले जीवन की चर्चा करते हैं या विचार करते हैं, तब वे भूमि पर आते हैं। कहानी में उपस्थित परिवेश को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं–

1. भौगोलिक परिवेश
2. प्राकृतिक परिवेश और
3. ऐतिहासिक परिवेश

भौगोलिक परिवेश

कहानी के प्रारंभ में दो पात्र आते हैं। दोनों बंदी हैं और नाव में बंदी हैं। नाव एक बड़े समुद्री पोत से बँधी हुई है। दोनों जिस समय मुक्त होने का प्रयास कर रहे हैं। प्रसाद जी ने उस समय के समुद्र का वर्णन इन शब्दों में किया है, ''तारक खचित नील अंबर और समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट

हो रहा था। समुद्र में आंदोलन था। नौका लहरों में विकल थी। दोनों बंदी अपने आपको मुक्त करने का प्रयास कर रहे थे।'' इतने में समुद्र में आँधी का आगमन होता है। आँधी की सूचनाओं से जहाज में 'आपत्ति–सूचक तूर्य' बजने लगा। सारे नाविक इस आपदा में व्यस्त हो गए। प्रसाद जी ने वर्णन किया ''तारे ढँक गए। तरंगे उद्वेलित हुईं। समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कन्दुक–क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।'' यह परिवेश कहानी के पात्रों के द्वारा किए जाने वाले कर्मों के लिए उपयुक्त था।

नाव जब मुक्त हो गई और चलने लगी तब बुद्धगुप्त ने पूछा कि हम लोग कहाँ हैं ''बाली द्वीप से बहुत दूर, संभवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना–जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।'' इस द्वीप का नाम चम्पा द्वीप रखा जाता है। जहाँ कहानी के पात्रों का शेष जीवन बीतता है। कहानी में पाँच वर्ष के अंतराल के बाद की कथा दिखाई देती है। पाँच बरस बाद पात्रों का जीवन बदल जाता है। अब बुद्धगुप्त जलदस्यु नहीं है। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल बुद्धगुप्त के अधीन है। कहानी के अंत में ''चम्पा द्वीप' के तट पर खड़ी हुई चम्पा देख रही है कि सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चम्पा का उपकूल छोड़कर पश्चिम–उत्तर की ओर महा जल–व्याल के समान सन्तरण कर रही है।'' यहाँ बुद्धगुप्त चला जाता है और चम्पा इसी द्वीप में रहकर 'आकाशदीप' जलाती रहती है।

प्राकृतिक परिवेश

प्रसाद जी इस कहानी में समुद्र की प्रकृति के विविध रंगों का वर्णन करते हैं। जब बुद्धगुप्त विजयी होता है तब 'उषा का मधुर आलोक' फूट पड़ता है। ''सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि'' मुस्कराने लगती है और अब सागर भी शांत है। रात्रि का वर्णन करते हुए प्रसाद जी लिखते हैं, ''शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झलमला रहे थे। चन्द्र की उज्ज्वल विजय पर अंतरिक्ष में शरद लक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।'' यहाँ चम्पा खुश है और दोनों के बीच स्नेह का अंकुर फूट रहा है। इसी तरह का परिवेश भावनात्मक प्रसाद जी ने चित्रित किया है। बीते पाँच वर्षों के जीवन को हसरत से याद करती हुई चम्पा कहती है, ''जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लादकर हमलोग सुखी जीवन बिताते थे– इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रयास में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी।''

शाम के समय का वर्णन करते हुए प्रसाद जी लिखते हैं ''निर्जन समुद्र के उपकूल में बेला से टकराकर लहरें बिखर जाती थीं। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शांत गंभीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।'' शांत–रोमानी परिवेश की सृष्टि करते हुए प्रसाद जी कथा के प्रवाह से हटकर समुद्र के वातावरण में निमग्न हो जाते हैं ''सामने शैलमाला की चोटी पर हरियाली में विस्तृत जल देश, नील–पिंगल संध्या, प्रकृति की सहृदय कल्पना, विश्राम की छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नीलजाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अंतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों में भर उठी।'' ऐसे परिवेश में चम्पा अपनी प्रतिशोध का कृपाण समुद्र में फेंक देती है। तब भी उसके जीवन में शांति कहाँ ! इस रहस्यमय

वातावरण से बाहर आकर चम्पा बुद्धगुप्त से अलग हो जाती है और बुद्धगुप्त उसे चम्पा द्वीप में ही छोड़कर अंततः भारत चला जाता है।

ऐतिहासिक परिवेश

'आकाशदीप' एक प्रेम कहानी है। कहानी का परिवेश समुद्री जीवन है। इस प्राकृतिक परिवेश पर प्रसाद जी ने इस इतिहास का आवरण डाल दिया है। यह इतिहास के उस काल खंड की कथा है जब भारत में अंग्रेजों का राज्य स्थापित नहीं हुआ था, न ही मुस्लिम शासन स्थापित हुआ था। इसी तरह समुद्र पर भी किसी का शासन नहीं था। सिर्फ व्यापारियों और जलदस्युओं के भरोसे समुद्र का व्यापार चलता था। प्रसाद जी यह बताना नहीं भूलते कि यह कितनी ही शताब्दियों के पहले की कथा है। उन कालखण्ड के समाज और परिवेश में यात्रा किये बिना 'आकाशदीप' का मोहक सौन्दर्य उद्घाटित नहीं होता। अतः प्रसाद जी भाषा और वातावरण के माध्यम से शताब्दियों पूर्व के इस कालखंड की यात्रा कराते हैं।

8.5 संरचना शिल्प

इस भाग में हम 'आकाशदीप' कहानी के शिल्प और भाषा की विशेषताओं पर विचार करेंगे।

8.5.1 शिल्प

'आकाशदीप' कहानी का शिल्प जटिल है। यह कहानी कथा की तरह नहीं चलती। इसका प्रारम्भ नाटकीय संवाद से होता है। इन संवादों से पता चलता है कि नाव पर दो बंदी हैं। दोनों बंदी आपस में संवाद करते हैं और मुक्त होने का प्रयास करते हैं। नाटकीय संवाद की विशेषता यह होती है कि इसमें एक पात्र बोलता है, तब दूसरा पात्र उसका ठीक–ठीक जवाब न देकर कोई और बात कहता है। इस तरह असंबद्ध सी प्रतीत होने वाली बातचीत से कहानी आगे गढ़ती है। कहानी का आरम्भ इस तरह से होता है :

''बंदी!''

''क्या है ? सोने दो।''

''मुक्त होना चाहते हो?''

''अभी नहीं, निद्रा खुलने पर चुप रहो।''

इस नाटकीय अंदाज में कहानी का प्रारम्भ होता है। फिर लेखक कहानी में आता है और आगे के घटनाक्रम का वर्णन करता चलता है। बीच–बीच में संवाद आते हैं, लेकिन कहानी लेखक के दखल से आगे बढ़ती है। इसके बाद कहानी में नाटकीय घटनाक्रम घटित होता है। कहानी का नायक (बुद्धगुप्त) नाव के नाविकों के नायक से द्वंद्व युद्ध करता है। लेखक इसका वर्णन करता जाता है और बुद्धगुप्त के अधिक बलशाली होने का प्रमाण देता है।

कहानी के क्रम को जोड़ने के लिए प्रसाद जी कहानी के क्रम को भंग कर देते हैं और यह जानने और बताने में लग जाते हैं कि ये दोनों पात्र बंदी क्यों बनाए गए। यह फ्लेश बैक तकनीक है, जिससे मुख्य कथा का तारतम्य बनता जाता है।

इसके बाद कहानी का फिर क्रम भंग होता है। आगे की कहानी कुछ पाँच बरस के बाद की आती है। इन पाँच बरसों का प्रसाद जी वर्णन नहीं करके संकेत के माध्यम से चम्पा और बुद्धगुप्त के रिश्तों की प्रगाढ़ता की ओर संकेत करते जाते हैं। यहाँ कहानी में एक स्थायित्व आ जाता है। पात्रों के पारस्परिक संबंधों में निश्चिंतता आ जाती है। एक दूसरे के प्रति विश्वास और प्रेम दिखाई देता है। एक दूसरे के सामने अपनी पसंद–नापसंद प्रकट करने का अधिकार मिल जाता है। यह सब कथात्मक वर्णन शैली में आता रहता है। कहानी का यह समय कहानी में घटना विहीन है।

जब कहानी में घटनाएँ नहीं होतीं, पात्र कहानी में अनुचिंतन की मुद्रा में होते हैं, तब प्रसाद जी काव्यात्मक गद्य लिखने लग जाते हैं– ''सामने जल–राशि का रजत श्रृंगार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैल–मालाएँ बन रही थीं– और वे मायाविनी छलानायें अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं।'' इस तरह के काव्यात्मक वर्णन से कहानी की प्रभावशीलता और रहस्यमयता बढ़ जाती है। इसी तरह प्रसाद जी बीच–बीच में दार्शनिक पंक्तियों से कहानी को सजा देते हैं। यह जयशंकर प्रसाद की विशेषता है जिन्हें उनकी अन्य कहानियों में भी देखा जा सकता है।

इन सब विधियों से कहानी का कथानक विकसित होता रहता है साथ ही आकाशदीप के दोनों पात्रों का चरित्र भी उद्‌घाटित होता रहता है। बीच में उल्लास और उत्साह के साथ–साथ प्रसाद जी आश्चर्य की सृष्टि भी कर देते हैं ताकि पात्रों को थोड़ा मानसिक आघात लगे। इस आघात से कहानी आगे बढ़ती है। बीच–बीच में पात्रों का स्वगत कथन और आत्म–चिंतन भी आता रहता है। कहानी का अंत होते–होते प्रसाद जी उसे लोककथा के रंग में रंग देते हैं और यह लिख देते हैं कि 'यह कितनी ही शताब्दियों के पहले की कथा है।' चम्पा आजीवन उस दीप–स्तम्भ को प्रज्ज्वलित करती रहती है। चम्पा द्वीप के निवासी ''उस माया–ममता और स्नेह–सेवा की देवी की समाधि–सदृश उसकी पूजा करते थे।'' हालाँकि कहानी कहते समय उसे वर्तमान की कहानी के रूप में ही कहते हैं। इस रंग के कारण कहानी की करुणा का रंग और भी गाढ़ा हो जाता है।

8.5.2 भाषा

प्रसाद जी के आलोचकों का मत है कि प्रसाद जी की कहानियों की भाषा काव्यात्मक है, वे अपनी कहानियों में देशज शब्दों का प्रयोग करने से बचते हैं। चूँकि 'आकाशदीप' का समय प्राचीनकाल है, जब भारत में इस्लाम का आगमन नहीं हुआ था, इसलिए वे अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग नहीं करते। 'आकाशदीप' संस्कृत तत्सम शब्दों से आप्लावित कहानी है। इसके बावजूद उनकी भाषा दुरूह नहीं है उसमें प्रवाह है। बीच–बीच में वे अत्यंत सहज भाषा का प्रयोग भी करते हैं। उदाहरण के लिए –

– ''तुम क्या करोगी ?''

– ''हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये।''

– ''अपत्ति–सूचक तूर्य बजने लगा।''

'आकाशदीप' के सारे पात्र एक ही भाषा बोलते हैं। यह अवश्य है कि उनकी मानसिकता के अनुरूप उनकी भाषा बदल जाती है। वस्तु–वर्णन करते समय प्रसाद जी इस दबाव से मुक्त हो जाते हैं। जैसे–सूर्योदय होने का वर्णन करते हुए वे लिखते

हैं– ''अनन्त जल निधि में उषा का मधुर आलोक फूट पड़ा।'' अपनी पीड़ा की गहराई का वर्णन करते हुए चम्पा कहती है– ''इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ–अनाथ हूँ।'' इतनी जटिल भाषा के बावजूद प्रसाद जी की भाषा में कहानीपन का प्रवाह है। भाषा कहानी की कथा को रोकती नहीं, वरन् उसके वातावरण को सजीव कर देती है और कहानी को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बोलते समय चम्पा की भाषा बहुत शक्तिशाली हो जाती है। ''बुद्धगुप्त! आज मैं अपना प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार–बार धोखा दिया।'' प्रेम में वही भाषा अत्यंत कोमल बनी रहती है– ''विश्वास! कदापि नहीं बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ! मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ।'' उदासी और अकेलेपन में भाषा का वैसा ही रंग बना रहता है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि प्रसाद जी की कहानी में छायावादी कवि की ही काव्य भाषा है। उसे वे गद्य में बदलते नहीं– ''चम्पा ने देखा तरल संकुल जलराशि में उसके कण्डील का प्रतिबिंब अस्त–व्यस्त था। वह अपनी पूर्णता के लिए सैंकड़ों चक्कर काटता था।'' अतीत के स्वप्नलोक में विचरण करती हुई चम्पा कहती है, ''जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लाद कर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे–इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी। बुद्धगुप्त उस विजन अनंत में जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम–तुम परिश्रम से थककर पालों में शरीर लपेटकर एक–दूसरे का मुँह क्यों देखते थे?'' यह दो अत्यंत निकटतम व्यक्तियों की भाषा है जो एक दूसरे से परस्पर जुड़े हुए हैं। 'आकाशदीप' की यह भाषा अस्वाभाविक नहीं लगती, हालाँकि इसमें छायावादी काव्य का रंग घुला मिला है।

बोध प्रश्न 3

9. 'आकाशदीप' कहानी की भाषा की विशेषता बताइए।

....

....

....

....

....

....

10. 'आकाशदीप' के शिल्प पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

8.6 सारांश

'आकाशदीप' जयशंकर प्रसाद की अत्यंत चर्चित और प्रशंसित कहानी है। यह मूलतः रोमांटिक अवसाद की कहानी है। इसकी नायिका चम्पा और नायक बुद्धगुप्त है। हालाँकि इसे नायिका प्रधान कहानी ही कहा जाएगा। चम्पा और बुद्धगुप्त दोनों पहली बार बंदी के रूप में समुद्री नाव में मिलते हैं। फिर चम्पा की प्रेरणा से बुद्धगुप्त पहले नाव की रस्सी काटकर उसे पोत से अलग कर देता है और फिर द्वंद्व युद्ध में नाविकों के नायक को पराजित कर नाव का मालिक बन जाता है। धीरे–धीरे उनमें प्रेम भाव जाग्रत होता है, परन्तु यह जानकर कि बुद्धगुप्त ने चम्पा के पिता की हत्या की थी। इस आशंका के कारण चम्पा बुद्धगुप्त के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है। बुद्धगुप्त चम्पा द्वीप छोड़कर भारत चला जाता है और चम्पा उसी द्वीप में आकाशद्वीप जलाती रहती है। प्रेम और घृणा के अंतर्द्वंद्व में चम्पा एकाकी जीवन का वरण करती है। इसे हिंदी में 'उसने कहा था' की परंपरा की कहानी माना जाता है। पूरी कथा मुख्य रूप से दो पात्रों – चम्पा और बुद्धगुप्त के इर्द–गिर्द घूमती है। इस कहानी की भाषा में छायावाली कविता का रंग घुला–मिला दिखाई देता है।

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) सूर्योदय, (ख) भागीरथी, (ग) चम्पा, बुद्धगुप्त, (घ) आदिवासी, जया।
2. उत्तर के लिए भाग 8.5 देखिए।
3. उत्तर के लिए 8.3 देखिए।
4. बुद्धगुप्त जलदस्यु था। उसने मणिभद्र के उस पोत पर आक्रमण किया, जिसमें चम्पा के पिता प्रहरी थे। इस आक्रमण में चम्पा के पिता मारे गए। चम्पा को शक था कि बुद्धगुप्त उसके पिता का हत्यारा है। अतः ऐसे व्यक्ति से वह विवाह कैसे कर सकती है!

बोध प्रश्न 2

5. वह उस व्यक्ति से प्रेम करने लगी थी, जो उसके पिता का हत्यारा था। वह उस व्यक्ति से (बुद्धगुप्त से) प्रेम और घृणा दोनों करती थी।
6. इस कथन में चम्पा की घोर निराशा प्रकट होती है जब वह कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र नहीं है– न घृणा–प्रेम। अतः वह कामना रहित हो गई है।
7. 1. (i) ताम्रलिप्ति, (ii) चम्पाद्वीप, (iii) नाव के नायक को ।
8. (i) गलत, (ii) सही, (iii) सही।

9 एवं 10 के लिए 8.5 देखिए और स्वयं उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए।

इकाई 9 'वापसी' (उषा प्रियंवदा) : वाचन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 कहानी का वाचन : वापसी

9.3 कहानी का सार

9.4 संदर्भ सहित व्याख्या

9.5 सारांश

9.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप प्रख्यात कथाकार उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' पढ़ने जा रहे हैं। कहानी के वाचन के बाद अगली इकाई में उसके विभिन्न पक्षों के विश्लेषण द्वारा उसका मूल्यांकन भी करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- कहानी में आए कठिन शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों के अर्थ बता सकेंगे; और
- कहानी के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

उषा प्रियंवदा (जन्म 1930) नयी कहानी आंदोलन से जुड़ी प्रमुख कथाकार है। नयी कहानी आंदोलन में कई कहानी लेखिकाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उषा प्रियंवदा के साथ-साथ कृष्णा सोबती और मन्नू भंडारी का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उषा प्रियंवदा का जन्म कानपुर में हुआ था। आपने अंग्रेजी में एम.ए. और पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की। दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन भी किया। फुलब्राइट छात्रवृत्ति मिलने पर उषा प्रियंवदा अमरीका चली गयीं जहाँ उन्होंने पोस्ट डॉक्टरेट की पढ़ाई की और बाद में वहीं विस्कासिन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। उषा प्रियंवदा ने कहानी के अलावा कई उपन्यास भी लिखे हैं जिनमें *पचपन्न खम्भे लाल दीवारें, बनवास* और *रुकोगी नहीं राधिका* विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके कई कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। उषा प्रियंवदा का अधिकतर लेखन शहरी मध्यवर्गीय जीवन से जुड़ा है। विशेष रूप से मध्यवर्गीय परिवारों में संबंधों में आने वाले तनाव और संघर्ष को अत्यंत संवेदनशील ढंग से पेश करने में उनको महारत हासिल रही है।

9.2 कहानी का वाचन : वापसी

गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नज़र दौड़ाई– दो बक्स, डोलची, बालटी – ''यह डिब्बा कैसा है गनेशी?'' उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ कुछ

गर्व, कुछ दुःख, कुछ लज्जा से बोला, ''घरवाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिए हैं। कहा, बाबूजी को पसन्द हैं। अब कहाँ हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पाएँगे।'' घर जाने की खुशी में गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया जैसे एक परिचित, स्नेही, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा था।

''कभी-कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहिएगा।'' गनेशी बिस्तर में रस्सी बाँधता हुआ बोला।

''कभी कुछ ज़रूरत हो तो लिखना गनेशी! इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।''

गनेशी ने अँगोछे के छोर से आँखें पोंछी, ''अब आप लोग सहारा न देंगे, तो कौन देगा! आप यहाँ रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।''

गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी जान-पहचान के लोग ले गए थे, और जगह-जगह मिट्टी बिखरी हुई थी। पर पत्नी, बाल-बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।

गजाधर बाबू खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे। संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अमर और लड़की कांति की शादियाँ कर दी थीं, दो बच्चे ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू नौकरी के कारण प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे और उनके बच्चे और पत्नी शहर में, जिससे पढ़ाई में बाधा न हो। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौटकर बच्चों से हँसते-बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते– उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाली क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि प्रकृति के न होने पर भी, उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद रहतीं। दोपहर में, गरमी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाए रहती और उनके स्टेशन से वापस आने पर गरम-गरम रोटियाँ सेंकती– उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा-सा कुछ और थाली में परोस देती और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह थके-हारे बाहर से आते तो उनकी आहट पर वह रसोई के द्वार पर निकल आती और उनकी सलज्ज आँखें मुस्करा उठतीं। गजाधर बाबू को तब हर छोटी बात भी याद आती और वह उदास हो उठते... अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

टोपी उतारकर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी, जूते खोलकर नीचे खिसका दिए। अंदर से रह-रहकर कहकहों की आवाज़ें आ रही थीं। इतवार का दिन था और उनके सब बच्चे इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे। गजाधर बाबू के सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान आ गई। उसी तरह मुस्कराते हुए, वह बिना खाँसे अंदर चले आए। उन्होंने देखा कि नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे शायद गत रात्रि की फिल्म में देखे गए किसी नृत्य की नकल कर रहा था और बसन्ती हँस-हँसकर दुहरी हो रही थी। अमर की बहू

को अपने तन-बदन, आँचल या घूँघट का कोई होश न था और वह उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। गजाधर बाबू को देखते हुए नरेन्द्र धप से बैठ गया और चाय का प्याला उठाकर मुँह से लगा लिया। बहू को होश आया और उसने झट से माथा ढक लिया, केवल बसन्ती का शरीर रह-रहकर हँसी दबाने के प्रयत्न में हिलता रहा।

गजाधर बाबू ने मुस्कराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा, ''क्यों नरेन्द्र, क्या नकल हो रही थी?'' ''कुछ नहीं बाबूजी।'' नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए। उससे उनके मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आई। बैठते हुए बोले, ''बसन्ती, चाय मुझे भी देना। तुम्हारी अम्मा की पूजा अभी चल रही है क्या?'' बसन्ती ने माँ की कोठरी की ओर देखा, ''अभी आती ही होंगी,'' और प्याले में उनके लिए चाय छानने लगी। बहू चुपचाप पहले ही चली गयी थी, अब नरेन्द्र भी चाय का आखिरी घूँट पीकर उठ खड़ा हुआ, केवल बसन्ती, पिता के लिहाज में, चौके में बैठी माँ की राह देखने लगी। गजाधर बाबू ने एक घूँट चाय पी, फिर कहा, ''बिट्टी चाय तो फीकी है।''

''लाइए, चीनी और डाल दूँ।'' बसन्ती बोली।

''रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आएँगी, तभी पी लूँगा।''

थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्घ्य का लोटा लिए निकलीं और अशुद्ध स्तुति करते हुए तुलसी में डाल दिया। उन्हें देखते ही बसन्ती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा, ''अरे, आप अकेले बैठे हैं– यह सब कहाँ गए?'' गजाधर बाबू के **मन में फाँस-सी करक** उठी, ''अपने-अपने काम में लग गए हैं– आखिर बच्चे ही हैं।''

पत्नी आकर चौके में बैठ गईं। उन्होंने नाक-भौं चढ़ाकर चारों और जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा, ''सारे में जूठे बर्तन पड़े हैं। इस घर में धरम-करम कुछ नहीं। पूजा करके सीधे चौके में घुसो।'' फिर उन्होंने नौकर को पुकारा। जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में, फिर पति की ओर देखकर बोलीं, ''बहू ने भेजा होगा बाज़ार।'' और एक लम्बी साँस लेकर चुप हो रहीं।

गजाधर बाबू बैठकर चाय और नाश्ते का इन्तज़ार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गई। रोज़ सुबह, पैसेंजर आने से पहले वह गर्म-गर्म पूरियाँ और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियाँ और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, काँच के गिलास में ऊपर तक भरी लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी, और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुँचे, गनेशी ने चाय पहुँचाने में कभी देर नहीं की। क्या मजाल की कभी उससे कुछ कहना पड़े।

पत्नी का शिकायत-भरा स्वर सुन उनके विचारों में व्याघात पहुँचा। वह कह रही थीं, ''सारा दिन इसी खिच-खिच में निकल जाता है। इसी गिरस्थी का धन्धा पीटते-पीटते उमर बीत गई। कोई ज़रा हाथ भी नहीं बँटाता।''

''बहू क्या करती है?'' गजाधर बाबू ने पूछा।

''पड़ी रहती है। बसन्ती को तो फिर कहो कि कॉलेज जाना होता है।''

मन में फाँस-सी करक: मन को कोई बात चुभना; व्याघात:चोट।

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसन्ती को आवाज़ दी। बसन्ती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा, ''बसन्ती, आज से शाम का खाना बनाने की ज़िम्मेवारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएँगी।''

बसन्ती मुँह लटकाकर बोली, ''बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है?''

गजाधर बाबू ने बड़े प्यार से समझाया, 'तुम सवेरे पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुईं। उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी हैं, दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए।''

बसन्ती चुप रह गई। उसके जाने के बाद उसकी माँ ने धीरे से कहा, ''पढ़ने का तो बहाना है। कभी जी नहीं लगता। लगे कैसे? शीला से ही फुरसत नहीं। बड़े-बड़े लड़के हैं उस घर में, हर वक्त वहाँ घुसा रहना, मुझे नहीं सुहाता। मना करूँ तो सुनती नहीं।''

नाश्ता कर गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गई थी—गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े, कभी-कभी अनायास ही इस सुस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती उन रेलगाड़ियों की, जो आतीं और थोड़ी देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जातीं।

घर छोटा होने के कारण बैठक में ही अब अपना प्रबंध किया था। उनकी पत्नी के पास अन्दर एक छोटा कमरा अवश्य था, पर वह एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्तर और घी के डिब्बे से घिरा था तो दूसरी ओर पुरानी रज़ाइयाँ, दरियों में लिपटी और रस्सी से बँधी रखी थीं, उसके पास एक बड़े-से टीन के बक्स में घर-भर के गरम कपड़े थे। बीच में एक असगनी बँधी हुई थी, जिस पर प्रायः बसन्ती के कपड़े लापरवाही से पड़े रहते थे। वह भरसक उस कमरे में नहीं जाते थे। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था। तीसरा कमरा, जो सामने की ओर था, बैठक था। गजाधर बाबू के आने से पहले उसमें अमर की ससुराल से आया बेंत की तीन कुर्सियों का सेट पड़ा था। कुर्सियों पर नीली गद्दियाँ और बहू के हाथों के कढ़े कुशन थे।

जब कभी उनकी पत्नी को कोई लम्बी शिकायत करनी होती, तो अपनी चटाई बैठक में डाल पड़ जाती थीं। तो वह एक दिन चटाई लेकर आ गईं। गजाधर बाबू ने घर-गृहस्थी की बातें छेड़ीं। वह घर का रवैया देख रहे थे। बहुत हलके से उन्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ खर्च कम होना चाहिए।

''सभी खर्च तो वाजिब-वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ? यही जोड़-गाँठ करते-करते बूढ़ी हो गई। न मन का पहना, न ओढ़ा।''

गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी को देखा। उनसे अपनी हैसियत छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करतीं, यह स्वाभाविक था, लेकिन उनमें सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत खटका। उनसे यदि राय-बात की जाती कि प्रबंध कैसे हो, तो उन्हें चिन्ता कम, संतोष अधिक होता।

लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी, जैसे परिवार की सब परेशानियों के लिए वही जिम्मेदार थे।

''तुम्हें किसी बात की कमी है अमर की माँ–घर में बहू है, लड़के-बच्चे हैं, सिर्फ रुपये से ही आदमी अमीर नहीं होता।'' गजाधर बाबू ने कहा और कहने के साथ ही अनुभव किया, यह उनकी आंतरिक अभिव्यक्ति थी ऐसी कि उनकी पत्नी नहीं समझ सकतीं। 'हाँ, बड़ा सुख है न बहू से। आज रसोई करने गई है, देखो क्या होता है।'' कहकर पत्नी ने आँखें मूँदीं और सो गईं। गजाधर बाबू बैठे हुए पत्नी को देखते रह गए। यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने संपूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह **लावण्यमयी** युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितांत अपरिचिता है। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी-सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा **श्रीहीन** और रूखा था। गजाधर बाबू देर तक निस्संग दृष्टि से पत्नी को देखते रहे और फिर लेटकर छत की ओर ताकने लगे।

अन्दर कुछ गिरा और उनकी पत्नी हड़बड़ाकर उठ बैठीं, ''लो, बिल्ली ने कुछ गिरा दिया शायद,'' और वह अन्दर भागीं। थोड़ी देर में लौटकर आईं तो उनका मुँह फूला हुआ था, ''देखो बहू को, चौका खुला छोड़ आई। बिल्ली ने दाल की पतीली गिरा दी। सभी तो खाने को हैं, अब क्या खिलाऊँगी?'' वह साँस लेने को रुकीं और बोलीं, ''एक तरकारी और चार पराँठे बनाने में सारा डिब्बा घी उँड़ेलकर रख दिया। ज़रा-सा दर्द नहीं है, कमाने वाला हाड़ तोड़े और यहाँ चीज़ें लुटें। मुझे तो मालूम था कि यह सब काम किसी के बस का नहीं है।''

गजाधर बाबू को लगा कि पत्नी कुछ और बोलेंगी तो उनके कान झनझना उठेंगे। ओंठ भींच, करवट लेकर उन्होंने पत्नी की ओर पीठ कर ली।

रात का भोजन बसन्ती ने जान-बूझकर ऐसा बनाया कि कौर तक निगला न जा सके। गजाधर बाबू चुपचाप खाकर उठ गए, पर नरेन्द्र थाली सरकाकर उठ खड़ा हुआ और बोला, ''मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।''

बसन्ती तुनककर बोली, ''तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है।''

''तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था?'' नरेन्द्र चिल्लाया।
''बाबूजी ने।''
''बाबूजी को बैठे-बैठे यही सूझता है।''

बसन्ती को उठाकर माँ ने नरेन्द्र को मनाया और अपने हाथ से कुछ बनाकर खिलाया। गजाधर बाबू ने बाद में पत्नी से कहा, ''इतनी बड़ी लड़की हो गई और उसे खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया।'' ''अरे आता सब कुछ है, करना नहीं चाहती।'' पत्नी ने उत्तर दिया।

अगली शाम माँ को रसोई में देख, कपड़े बदलकर बसन्ती बाहर आई तो बैठक से गजाधर बाबू ने टोक दिया, ''कहाँ जा रही हो?''

''पड़ोस में, शीला के घर।'' बसन्ती ने कहा।

लावण्यमयीःसुन्दर; श्रीहीनःशोभा से रहित; निस्संगःएकाकी

''कोई ज़रूरत नहीं है, अन्दर जाकर पढ़ो।'' गजाधर बाबू ने कड़े स्वर में कहा। कुछ देर अनिश्चित खड़े रहकर बसन्ती अंदर चली गई।

गजाधर बाबू शाम को रोज़ टहलने चले जाते थे। लौटकर आए तो पत्नी ने कहा, ''क्या कह दिया बसन्ती से? शाम से मुँह लपेटे पड़ी है। खाना भी नहीं खाया।''

गजाधर बाबू खिन्न हो आए। पत्नी की बात का उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि बसन्ती की शादी जल्दी ही कर देनी है। उस दिन के बाद बसन्ती पिता से बची-बची रहने लगी। जाना होता तो पिछवाड़े से जाती। गजाधर बाबू ने दो-एक बार पत्नी से पूछा तो उत्तर मिला, ''रूठी हुई है।'' गजाधर बाबू को और रोष हुआ। लड़की के इतने मिज़ाज! जाने को रोक दिया तो पिता से बोलेगी नहीं। फिर उनकी पत्नी ने ही सूचना दी कि अमर अलग रहने की सोच रहा है।

''क्यों?'' गजाधर बाबू ने चकित होकर पूछा।

पत्नी ने साफ-साफ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत थीं। उनका कहना था कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं। कोई आने-जाने वाला हो तो कहीं बैठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी वह छोटा-सा समझते थे और मौके-बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब-तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थीं। ''हमारे आने के पहले भी कभी ऐसी बात हुई थी?'' गजाधर बाबू ने पूछा। पत्नी ने सिर हिलाकर जताया कि नहीं। पहले अमर घर का मालिक बनकर रहता था—बहू को कोई रोक-टोक न थी। अमर के दोस्तों को प्रायः यहीं अड्डा जमा रहता था और अन्दर से नाश्ता-चाय तैयार होकर जाता रहता था। बसन्ती को भी वही अच्छा लगता था।

गजाधर बाबू ने बहुत धीरे से कहा, ''अमर से कहो, जल्दबाज़ी की कोई जरूरत नहीं है।''

अगले दिन वह सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चारपाई नहीं है। अन्दर जाकर पूछने ही वाले थे कि उनकी दृष्टि रसोई के अन्दर बैठी पत्नी पर पड़ी। उन्होंने यह कहने को मुँह खोला कि बहू कहाँ है; पर कुछ याद कर चुप हो गए। पत्नी की कोठरी में झाँका तो अचार, रज़ाइयों और कनस्तरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पाई। गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कहीं टाँगने को दीवार पर नज़र दौड़ाई। फिर उसे मोड़कर अलगनी के कुछ कपड़े खिसकाकर एक किनारे टाँग दिया। कुछ खाए बिना ही अपनी चारपाई पर लेट गए। कुछ भी हो, तन आखिरकार बूढ़ा ही था। सुबह-शाम कुछ दूर टहलने अवश्य चले जाते, पर आते-आते थक उठते थे। गजाधर बाबू को अपना बड़ा-सा, खुला हुआ क्वार्टर याद आ गया। निश्चिन्त जीवन, सुबह पैसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल-पहल, चिरपरिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट्-खट्, जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह था। तूफान और डाकगाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल के मिल के कुछ लोग कभी-कभी पास आ बैठते। वही उनका दायरा था, वही उनके साथी। वह जीवन अब उन्हें एक खोई निधि-सी प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह ज़िन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूँद भी न मिली।

लेटे हुए वह घर के अन्दर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी-सी झड़प, बाल्टी पर खुले नल की आवाज़, रसोई के बरतनों की खटपट और उसी में दो गौरैयों का वार्तालाप – और अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई, तो वहाँ चले जाएँगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेशी की तरह पड़े रहेंगे . . . और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेन्द्र माँगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रुपये दे दिये–बसन्ती काफी अँधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा– पर उन्हें सबसे बड़ा गम यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया। वह मन ही मन कितना भार ढो रहे हैं इससे वह अनजान ही बनी रहीं। बल्कि उन्हें पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने के कारण शान्ति ही थी। कभी-कभी कह भी उठतीं, ''ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए। बच्चे बड़े हो गए हैं। हमारा जो कर्त्तव्य था, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं, शादी कर देंगें।''

गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी माँग में सिंदूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्त्तव्यों से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि अब वही उसकी संपूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधर बाबू उनके जीवन के केंद्र नहीं हो सकते। उन्हें तो अब उनकी शादी के लिए भी उत्साह बुझ गया। किसी बात में हस्तक्षेप न करने के निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी खुशी एक गहरी उदासीनता में डूब गई।

इतनी सब निश्चयों के बावजूद भी गजाधर बाबू एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थी, ''कितना कामचोर है। बाज़ार की हर चीज़ में पैसा बचाता है, तो खाता ही चला जाता है।'' गजाधर बाबू को यह महसूस होता रहता था कि उनके घर का रहन-सहन और खर्च बिल्कुल बेकार है। छोटा-मोटा काम है। घर में तीन मर्द हैं। कोई-न-कोई कर ही देगा। उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया। अमर दफ्तर से आया तो नौकर को पुकारने लगा। अमर की बहू बोली, ''बाबूजी ने नौकर छुड़ा दिया है।''

''क्यों?''

''कहते हैं, खर्च बहुत है।''

यह वार्तालाप बहुत सीधा-सा था, पर जिस टोन में बहू बोली, गजाधर बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण गजाधर बाबू टहलने नहीं गए थे। आलस्य में उठकर बत्ती भी नहीं जलाई–इस बात से बेखबर नरेन्द्र माँ से कहने लगा, ''अम्माँ, तुम बाबूजी से कहतीं क्यों नहीं? बैठे-बिठाए नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझें कि मैं साइकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊँगा तो मुझसे यह नहीं होगा।'' ''हाँ अम्माँ,'' बसन्ती का स्वर था, ''मैं कॉलेज भी जाऊँ और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊँ, यह मेरे बस की बात नहीं है।''

''बूढ़े आदमी हैं,'' अमर मुनमुनाया, ''चुपचाप पड़े रहें। हर चीज़ में दखल क्यों देते हैं!'' पत्नी ने बड़े व्यंग्य से कहा, ''और कुछ नहीं सूझा तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गई तो पन्द्रह दिन का राशन पाँच दिन में बनाकर रख दिया।'' बहू कुछ कहे, इससे पहले वह चौके में घुस गईं। कुछ देर में अपनी कोठरी में आईं और बिजली जलाई तो गजाधर बाबू को लेटे देख सिटपिटाईं। गजाधर बाबू की मुखमुद्रा से वह उनके भावों का अनुमान न लगा सकीं। वह चुप, आँखें बंद किए लेटे रहे।

गजाधर बाबू चिट्ठी हाथ में लिए अंदर आए और पत्नी को पुकारा। वह भीगे हाथ लिए निकलीं और आंचल से पोंछती हुई पास आ खड़ी हुईं। गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा, ''मुझे सेठ रामजीमल की चीनी-मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएँ, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने मना कर दिया था।'' फिर कुछ रुककर, जैसे बुझी हुई आग में एक चिनगारी चमक उठे, उन्होंने धीमे स्वर में कहा, ''मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद, अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूँगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?''

''मैं?'' पत्नी ने सकपकाकर कहा, ''मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की . . .''

बात बीच में काट गजाधर बाबू ने थके, हताश स्वर में कहा, ''ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था।'' और गहरे मौन में डूब गए।

नरेन्द्र ने बड़ी तत्परता से बिस्तर बाँधा और रिक्शा बुला लाया। गजाधर बाबू का टिन का बक्स और पतला-सा बिस्तर उस पर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया हाथ में लिए गजाधर बाबू रिक्शे पर बैठ गए। एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली और फिर दूसरी ओर देखने लगे और रिक्शा चल पड़ा।

उनके जाने के बाद सब अन्दर लौट आए। बहू ने अमर से पूछा, ''सिनेमा ले चलिएगा न?'' बसन्ती ने उछलकर कहा, ''भइया, हमें भी।''

गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गईं। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लाईं और कनस्तरों के पास रख दिया, फिर बाहर आकर कहा, ''अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।''

बोध प्रश्न 1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   क) गजाधर बाबू ....की नौकरी के बाद रिटायर होकर घर जा रहे थे।

   ख) गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत ....व्यक्ति थे।

   ग) बसंती गजाधर बाबू की .... थी।

   घ) पत्नी की शिकायत भरा स्वर सुन उनके विचारों में .... पहुँचा।

2. गजाधर बाबू से अमर और उसकी बहू की क्या–क्या शिकायतें थीं ?

....

....

....

....

3. गजाधर बाबू रिटायर होने के बाद उचित प्रसन्न क्यों थे? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।

....

....

....

....

....

4. घर पहुँचने के बाद छोटे घर में गजाधर बाबू ने अपना क्या प्रबंध किया ?

....

....

....

....

5. गजाधर बाबू की पत्नी से क्या शिकायतें थीं।

....

....

....

....

9.3 कहानी का सार

उषा प्रियंवदा की प्रख्यात कहानी 'वापसी' एक रिटायर्ड व्यक्ति गजाधर बाबू के अकेलेपन की कहानी है। गजाधर बाबू 35 साल की रेलवे की नौकरी के बाद रिटायर होकर अपने घर-परिवार के बीच लौटते हैं जहाँ उनकी पत्नी, विवाहित बेटा अमर और उसकी पत्नी, छोटा बेटा नरेंद्र और बेटी बसंती रहती हैं। गजाधर बाबू के लौटने से घर की पहले से चली आ रही व्यवस्था में व्यवधान पड़ जाता है। वे जिस भावनात्मक स्वागत की उम्मीद अपनी पत्नी और बच्चों से कर रहे थे, वैसा कुछ नहीं होता इसके विपरीत सभी को ऐसा महसूस होता है कि गजाधर बाबू के आने से उनकी निजी जिंदगी में हस्तक्षेप हो रहा हैं। पिता होने के नाते वे पत्नी और बच्चों से जिस ममत्व की आशा कर रहे थे, वह तो नहीं मिलता। इसके विपरीत उन्हें महसूस होता है कि उस घर में तो उनके लिए कोई जगह ही नहीं है। पहले उनकी चारपाई बैठक में लगाई जाती है। बाद में बहू के ऐतराज करने पर उनसे पूछे बिना एक कोठरी में

डाल दिया जाता है। पत्नी शिकायत करती है कि घर के कामकाज में न बेटी मदद करती है और न ही बहू। लेकिन जब बेटी और बहू को खाना बनाने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है, तो इसे कोई पसंद नहीं करता। घर खर्च को सीमित करने के लिए जब वे नौकर को छुट्टी दे देते हैं तो इसे उनकी दखलंदाजी समझा जाता है। अपने इस परिवार के रूखे व्यवहार से उनको गहरा आघात लगता है। सबसे बड़े दुख की बात उनके लिए यह होती है कि उनकी पत्नी भी उनको समझने के लिए तैयार नहीं है। गजाधर बाबू जिस अकेलेपन से भाग कर आये थे, वह अकेलापन अपनी पत्नी और बच्चों के बीच कम होने की बजाए बढ़ जाता है। इस निराशा में वे वापस उसी छोटी सी जगह पर लौट जाते हैं जहाँ वे रेलवे की नौकरी करते थे, एक चीनी मिल में नौकरी करने के लिए। वे अपनी पत्नी से साथ चलने के लिए कहते हैं लेकिन वह इन्कार कर देती है।

बोध प्रश्न

6. गजाधर बाबू अपने घर क्यों लौट रहे थे?

   क) बीमारी की वजह से

   ख) सेवानिवृत्ति की वजह से

   ग) अवकाश की वजह से

   घ) बेटी के विवाह की वजह से ( )

7. घर लौटने पर गजाधर बाबू ने क्या महसूस किया?

   क) सभी बहुत खुश थे।

   ख) सिर्फ पत्नी खुश थी।

   ग) वे अवांछित मेहमान थे।

   घ) कुछ भी महसूस नहीं किया। ( )

9.4 संदर्भ सहित व्याख्या

प्रत्येक साहित्यिक रचना में कुछ ऐसी पंक्तियां अवश्य होती हैं जो उस रचना के केंद्रीय भाव को समझने में मददगार होती है। इस कहानी में भी ऐसी कई पंक्तियाँ आप खोज सकते हैं। हम यहाँ ऐसे कुछ उद्धरण प्रस्तुत करेंगे जिनकी व्याख्या आप स्वयं करने का प्रयास करें। इन उद्धरणों में से एक की व्याख्या के लिए हम आपको कुछ संकेत देंगे जिनकी मदद से आप स्वयं व्याख्या कर सकेंगे।

उद्धरणः 1

जब वह थके-हारे बाहर से आते तो उनकी आहट पर वह रसोई के द्वार पर निकल आती और उनकी सलज्ज आँखें मुस्करा उठतीं। गजाधर बाबू को तब हर छोटी बात भी याद आती और वह उदास हो उठते...अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

संदर्भः प्रस्तुत गद्यांश उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' से लिया गया है। इस कहानी में मुख्य पात्र गजाधर बाबू रेलवे की नौकरी से रिटायर होकर अपने घर लौट रहे हैं।

पत्नी अपने बच्चों के साथ शहर में रहती हैं। उन्हें अपनी पत्नी के साथ बिताये दिनों की याद आ रही है।

व्याख्याः गजाधर बाबू उन दिनों को याद कर रहे हैं जब उनकी पत्नी उनके साथ रहती थी। नौकरी से लौटकर जब वे घर पहुँचते थे, तब उनकी पत्नी अधिकांशतः रसोई में होती थी। अपने पति के आने की आहट से वह रसोई के दरवाजे पर आ खड़ी होती थी और गजाधर बाबू को देखकर उसकी आँखे मुस्करा उठती थीं। लेकिन स्त्री सुलभ लज्जा के साथ। अपनी पत्नी की यह सुंदर छवि अभी भी उनकी यादों में बसी हुई हैं। ऐसी कई यादें एक-एक कर उनके मन-मस्तिष्क में उभर आती हैं और उन्हें याद कर वे उदास हो जाते हैं। सालों से वे इस प्यार और आदर से दूर रहे हैं। लेकिन अब उन्हें और इंतजार नहीं करना है। अपने जीवन के इस अभाव से शीघ्र ही मुक्त हो जाएँगे और अपनी पत्नी और बच्चों के बीच लौट जाएंगे। इन प्रेम से भरी यादें ही उन्हें जल्दी से जल्दी घर पहुँचने के लिए प्रेरित कर रही हैं।

विशेषः
1. रिटायर होकर अपने घर जाने की तैयारी करते गजाधर बाबू के अपनी पत्नी के प्रति प्रेम भाव को यहां प्रस्तुत किया गया है। कहानी में बाद में जो कुछ घटित होता है, वह इस वर्णन के साथ कंट्रास पैदा करता है।
2. सहज और संवेदनशील भाषा है जिसमें किसी तरह की नाटकीयता नहीं है।

उद्धरणः 2

गजाधर बाबू बैठे हुए पत्नी को देखते रह गए। यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने संपूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमय युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितांत अपरिचिता हैं। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी-सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा श्रीहीन और रूखा था।

व्याख्या के लिए संकेतः उपर्युक्त उद्धरण, उद्धरण–1 के साथ रखकर पढ़ें। आप समझ गये होंगे कि जब गजाधर बाबू घर लौटते हैं, तो वहाँ सब कुछ वैसा नहीं है जिसके होने की उन्होंने कल्पना की थी। इसके विपरीत घर में उनके बच्चों का ही नहीं उनकी पत्नी का भी व्यवहार वैसा स्नेह भरा नहीं है जैसा उनकी स्मृतियों में बसा था। इस संकेत के आधार पर संदर्भ, व्याख्या और विशेष स्वयं लिखने का प्रयास करें।

उद्धरणः 3

और अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई, तो वहाँ चले जाएँगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेशी की तरह पड़े रहेंगे...और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले।

व्याख्या के लिए संकेतः गजाधर बाबू को घर की बदली परिस्थितियों ने हतप्रभ कर दिया है। उन्हें इस बात की बिल्कुल उम्मीद नहीं थी कि उनको अपने ही घर में

अपनों से ऐसी उपेक्षा मिलेगी। धीरे-धीरे वे अपने को घर के मामलों से अलग कर लेते हैं और अंततः वे घर छोड़ कर ही चले जाते हैं। उम्मीद है, आप उपर्युक्त कथन की भी व्याख्या कर सकेंगे।

9.5 सारांश

'वापसी' कहानी उषा प्रियंवदा की प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी में एक रिटायर्ड व्यक्ति गजाधर बाबू के अकेलेपन के अनुभवों को दर्शाया गया है। परिवार में रहते हुए भी वे अकेलेपन का दंश भोगते हैं। कहानी में विविध स्थितियों–परिस्थितियों के माध्यम से लेखिका गजाधर बाबू के इस अकेलेपन का उद्घाटन करती हैं। इस प्रक्रिया में वे यह भी दर्शाती चलती हैं कि उन स्थितियों के प्रति गजाधर बाबू की दृष्टि अलग है और परिवार के अन्य सदस्यों की अलग। पत्नी और बच्चों का व्यवहार उन्हें अपने ही घर में अवांछनीय अनुभूत कराने लगता है और वे अंततः वापसी का निर्णय लेते हैं।

9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. (क) 35 (ख) स्नेही (ग) पुत्री (घ) व्याघात

2, 3, 4 एवं 5 प्रश्नों के उत्तर कहानी का ध्यान से वाचन कर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

6. (ख)

7. (ग)

इकाई 10 'वापसी' की कथावस्तु और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 'वापसी' कहानी की कथावस्तु

10.3 चरित्र चित्रण

10.4 परिवेश

10.5 संरचना शिल्प

10.5.1 शैली

10.5.2 भाषा और संवाद

10.6 मूल्यांकन

10.7 सारांश

10.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इससे पूर्व की इकाई में आपने उषा प्रियम्वदा की कहानी 'वापसी' का वाचन किया तथा उसके कुछ अंशों की व्याख्या से परिचित हुए। प्रस्तुत इकाई 'वापसी' कहानी के विश्लेषण पर आधारित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'वापसी' कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण सकेंगे;
- कहानी के मुख्य तथा सहायक चरित्रों से परिचित हो सकेंगे तथा उनका चरित्र चित्रण कर सकेंगे;
- कहानी की परिवेशगत पृष्ठभूमि बता सकेंगे;
- कहानी की भाषा, शैली को विश्लेषित कर सकेंगे; और
- कहानी के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे

10.1 प्रस्तावना

'वापसी' कहानी मध्यवर्गीय परिवार संबंधों और दो पीढ़ियों के अंतर्द्वंद्व का पिता के प्रति बच्चों के बदलते रवैये का बारीक चित्रण किया गया है। कहानी के केन्द्र में मुख्य पात्र गजाधर बाबू हैं। पूरी कहानी को लेखिका ने उनकी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। गजाधर बाबू संवेदनशील व्यक्ति की कहानी बारीकी से उन स्थितियों, परिस्थितियों को उठाती है। जिनके कारण गजाधर बाबू की संवेदनशीलता पर आघात होता है। आपने पिछली इकाई में कहानी का वाचन किया है। इस इकाई में कहानी को विश्लेषित करेंगे। अपने घर में अतिथि की तरह कुछ समय के लिए आने वाले गजाधर बाबू को दिए जाने वाले महत्व के कारण वे स्वयं को घर के लिए महत्वपूर्ण व्यक्ति समझने लगते हैं। सेवानिवृत्ति के पश्चात् जब वे हमेशा के लिए घर में रहने जाते हैं तो वहाँ स्वयं

को अवांछनीय के रूप में अनुभव करने लगते है। अंततः वापसी का निर्णय लेते है। इस पूरी प्रक्रिया का अंकन कहानी में बारीकी से किया गया है।

10.2 'वापसी' कहानी की कथावस्तु

किसी भी कहानी की कथावस्तु को समझने के लिए यह समझना जरूरी है कि कहानी की रचना किसलिए की गई। इस कहानी के माध्यम से रचनाकार क्या कहना चाहता है और जो कहना चाहता है उसे कहने के लिए उसने कथानक को किस तरह विकसित किया है। इस दृष्टि से विचार करने पर 'वापसी' कहानी के केंद्रीय भाव को समझना होगा।

उषा प्रियंवदा की 'वापसी' एक सेवानिवृत्त रेलवे कार्मिक गजाधर बाबू की कहानी है। कहानी में इस बात का उल्लेख नहीं है कि गजाधर बाबू रेलवे में किस पद पर थे और किस तरह का काम करते थे। लेकिन कहानी में बताया गया है कि उनकी पोस्टिंग आमतौर पर छोटे स्टेशनों पर होती थी, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्टेशन मास्टर पद पर कार्य करते होंगे। स्टेशन मास्टर का पद ऐसा है जिसमें रेलवे कार्मिक को छोटे-छोटे स्टेशनों पर ड्यूटी देनी होती है। गजाधर बाबू रेल विभाग में पैंतीस साल तक नौकरी करने के बाद अपने घर लौट रहे हैं। उनकी नौकरी इस तरह की है कि उन्हें रेलवे के छोटे-छोटे स्टेशनों पर रहना पड़ता है। उन छोटी जगहों पर वे अपने बच्चों की पढ़ाई का उचित प्रबंध नहीं कर सकते थे और न ही वे अपनी पत्नी और बच्चों को अन्य सुविधाएँ प्रदान कर सकते थे। यही सोचकर उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था जहाँ उनकी पत्नी अपने बच्चों के साथ रहती थीं। गजाधर बाबू के कुल चार बच्चे थे दो बेटे, दो बेटियाँ। एक बेटी और एक बेटे की शादी हो गई थी। बेटी शादी के बाद ससुराल चली गई थी लेकिन बेटा उसी मकान में अपनी माँ, पत्नी और छोटे भाई और बहन के साथ रह रहा था। छोटे भाई-बहन अभी पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू लौटकर इसी अपने घर-परिवार में आते हैं। उनमें घर लौटने की खुशी है। अपनी पत्नी का साथ दुबारा पाने की इच्छा है जिनके साथ बिताये कई सुखद अनुभव उनकी यादों में बसे हैं। पत्नी की सुंदर और स्नेह भरी छवि उनकी स्मृतियों में बनी हुई है। लंबे काल तक अपनी पत्नी और बच्चों से अलग और अकेले रहने से उन्हें मुक्ति मिलने वाली है, इस बात ने उन्हें खुशी से भर दिया है। हालाँकि उनके मन में इस बात का विषाद भी है कि इतने सालों जिस संसार में रहे वह भी उनसे छूट रहा है। यहाँ उन्हें आदर भी मिला है और स्नेह भी। लेकिन जहाँ वे जा रहे हैं वह उनका अपना घर-संसार है। गजाधर बाबू के उस समय की मानसिकता को कहानीकार इन शब्दों में व्यक्त करती हैं, *'गजाधर बाबू खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे'*। कहानी का केंद्रीय मुद्दा यह है कि घर पहुँचने पर क्या उन्हें वही संसार मिलता है जो उनकी यादों में बसा था और जिसके मिलने की उन्होंने उम्मीद की थी।

गजाधर बाबू को वह दुनिया नहीं मिलती जिसकी उन्होंने उम्मीद की थी। जल्दी ही उन्हें एहसास हो जाता है कि वे अपने ही घर में बिन बुलाए मेहमान की तरह है। उनके आने से जैसे घर की बनी बनायी व्यवस्था में व्यवधान पैदा हो गया है। कहानी में कुछ ऐसे प्रसंगों का उल्लेख हैं जो उन्हें धीरे-धीरे अपने

घर वालों से दूर ले जाती है। यहाँ तक कि उन्हें लगता है कि उनकी पत्नी भी अब उनके करीब नहीं रह गई है। वे हर घटना के बाद घर से दूर छोटे स्टेशनों पर बिताई अपनी जिंदगी को याद करने लगते। कहानी की शुरुआत में ही वर्णित एक घटना के उल्लेख से इसे समझा जा सकता है।

लौटने के बाद पहली बार गजाधर बाबू अपने बच्चों के बीच जाते हैं जो उनकी अनुपस्थिति में चाय पीते हुए हँसी-मजाक कर रहे होते हैं। लेकिन उनको देखकर सब चुप हो जाते हैं। बहू अपने सिर पर पल्ला रखकर चली जाती है। बेटा चाय का आखिरी घूँट भरकर वहाँ से खिसक जाता है। बेटी बसंती पिता के लिए चुपचाप कप में चाय उँडेलती है और कप उनके हाथ में पकड़ा देती है। पिता चाय का घूँट लेते हैं और कहते हैं, *'बिट्टी चाय तो फीकी है।'* यह छोटी सी घटना इस बात को बताती है कि पिता की पसंद-नापसंद के बारे में बच्चों को कोई जानकारी नहीं है। इस बीच पत्नी वहाँ आती है। लेकिन वह अपना ही दुखड़ा रोने लगती है। गजाधर बाबू चाय और नाश्ते का इंतजार करने लगते हैं। उन्हें ऐसा लगने लगता है कि उनकी मौजूदगी ने घर में कोई उत्साह पैदा नहीं किया है। ऐसे समय उन्हें रेलवे स्टेशन के अपने नौकर गनेशी की याद आती है : *'रोज सुबह, पैसेंजर आने से पहले वह गर्म-गर्म पूरियाँ और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियाँ और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, काँच के गिलास में ऊपर तक भरी लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी, और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुँचे, गनेशी ने चाय पहुँचाने में कभी देरी नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े'*।

गजाधर बाबू अपने घर वालों से गनेशी से ज्यादा की अपेक्षा करते थे लेकिन उन्हें गनेशी जैसी सेवा और आदर घर में नहीं मिल रहा था। इसका उन्हें एहसास होने लगा था। बाद की घटनाओं से यह एहसास बढ़ता जाता है। घर में उनके रहने की व्यवस्था कुछ इस तरह की जाती है जैसे *'किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है'*। पत्नी बच्चों के बारे में बहुत-सी शिकायतें करती हैं लेकिन जब उन शिकायतों पर वे बच्चों को कुछ कहते हैं, तो न बच्चों को अच्छा लगता है और न ही पत्नी को।

अपने प्रति अपनी पत्नी और बच्चों का व्यवहार उन्हें अंदर तक आहत कर देता है। पत्नी की जो सुंदर और स्नेह भरी छवि देखने की उम्मीद उन्होंने की थी, उन्हें लगता है कि वह कहीं खो गई हैं। अब वही पत्नी कुछ इस तरह नज़र आती है: *'गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा श्रीहीन और रूखा था'।* गजाधर बाबू का पूरा व्यवहार घर के मुखिया सा है जो मानता है कि घर में व्यवस्था और अनुशासन लाने की जिम्मेदारी उनकी है। इसके लिए वे जो भी प्रयत्न करते हैं वे बच्चों को अपनी जिंदगी में दखल लगते हैं और इस बात को वे किसी न किसी रूप में व्यक्त भी कर देते हैं। इससे गजाधर बाबू और अधिक दुखी हो जाते हैं। उनका अकेलापन और अधिक बढ़ जाता है। लेकिन जब उनकी पत्नी बताती है कि बड़ा बेटा अमर अलग होना चाहता है तो वे समझ जाते हैं कि इस घर में उनके लिए कोई जगह नहीं है। पिता की गैर मौजूदगी में *''अमर घर का मालिक बनकर रहता था—बहू को कोई रोक-टोक न थी। अमर के दोस्तों का प्रायः यहीं अड्डा जमा रहता था और अंदर से नाश्ता-चाय तैयार होकर जाता रहता था। बसंती को भी वही अच्छा लगता था''।* स्पष्ट ही गजाधर बाबू ने जाने-अनजाने घर के अन्य सदस्यों की स्वतंत्रता छीन ली थी। यहाँ यह प्रश्न जरूर उठता है कि

उस घर-परिवार में उनकी पत्नी ने अपने को 'एडजस्ट' कर लिया था लेकिन गजाधर बाबू क्यों नहीं कर सके। क्यों वे यह चाहते थे कि घर के सभी लोग उनकी इच्छा के अनुरूप अपने को ढालें न कि वे खुद उनके अनुकूल अपने को ढाल ले। इस लचीलेपन के न होने के कारण ही गजाधर बाबू को अकेले ही दुबारा उसी छोटी जगह जाने का फैसला करना पड़ता है जहाँ से वे सेवानिवृत्त हुए थे। यहाँ तक कि उनकी पत्नी भी साथ जाने के लिए तैयार नहीं होती।

'वापसी' कहानी छोटे-छोटे प्रसंगों से निर्मित हुई है। इसमें ऐसा कोई प्रसंग नहीं है जो असामान्य हो। लेकिन इन सामान्य प्रसंगों से ही कहानी में गजाधर बाबू का अकेलापन बहुत ही तीव्रता से उभरकर आता है। कहानी गजाधर बाबू के नज़रिए से लिखी गई है। इसलिए शेष पात्रों का पक्ष उन्हीं के नज़रिए से सामने आता है और वे सभी किसी न किसी रूप में गजाधर बाबू को घर छोड़ने के लिए मजबूर करते नज़र आते हैं।

कहानी को तीन भागों में विभाजित करके देख सकते हैं। पहले भाग में गजाधर बाबू का रिटायर होकर अपने घर लौटने से संबंधित प्रसंग हैं। यह भाग छोटा है जिसमें घर-परिवार के बीच लौटने का उल्लास मुख्य रूप से व्यक्त हुआ है। दूसरा भाग जिसमें कहानी का विकास होता है, उसमें गजाधर बाबू का अपने घर-परिवार वालों के साथ रहने से जुड़े प्रसंग हैं। इन प्रसंगों के माध्यम से गजाधर बाबू का अपने ही परिवार से होने वाले मोहभंग का अपेक्षाकृत विस्तार से वर्णन है। तीसरे भाग में उनका वापस उसी छोटी जगह लौट जाने का निर्णय और लौटना है जहाँ से वे रिटायर होकर आये थे। इस तरह गजाधर बाबू की नौकरी से पहली वापसी और घर से दूसरी वापसी में खत्म हो जाती है।

10.3 चरित्र–चित्रण

'वापसी' कहानी गजाधर बाबू को केंद्र में रखकर लिखी गई है इसलिए कहानी में मुख्य चरित्र भी वही हैं और उन्हीं का चरित्र सबसे अधिक मुखर होकर सामने आता है। इनके अलावा उनकी पत्नी का चरित्र दूसरे पात्रों की तुलना में ज्यादा उभरकर आता है। शेष सभी पात्र कहानी की जरूरत के अनुसार आते-जाते रहते हैं और उनका चरित्र बहुत उभरकर नहीं आता। लेकिन उनसे जुड़े जो भी प्रसंग सामने आते हैं उनसे उनके चरित्र की केंद्रीय विशेषताओं की पहचान हो जाती है। अपने सीमित कलेवर के कारण कहानी में बहुत अधिक पात्र हो भी नहीं सकते। यह कहानी लेखिका के शिल्प की विशेषता है कि उन्होंने कथावस्तु का गठन इस तरह किया है कि पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ स्वतः ही उभर आती हैं। सबसे पहले हम गजाधर बाबू के व्यक्तित्व की विशेषताओं को पहचानने की कोशिश करते हैं।

गजाधर बाबू

गजाधर बाबू को इस कहानी का केंद्रीय पात्र या नायक कहा जा सकता है। पूरी कहानी उन्हीं के इर्दगिर्द घूमती है। गजाधर बाबू पर केंद्रित होने के बावजूद इसे चरित्र प्रधान कहानी कहना उचित नहीं है क्योंकि कहानी का मकसद गजाधर बाबू के चरित्र को उभारना नहीं है बल्कि उनके माध्यम से परिवारों में वृद्ध लोगों की बदलती स्थिति को दर्शाना है। गजाधर बाबू वैसे तो घर के मुखिया हैं और परंपरागत दृष्टि से देखने पर उनकी इच्छा और आदेश ही पूरे परिवार के लिए सर्वमान्य होने चाहिए। वह इसका प्रयत्न भी करते हैं कि घर के सभी सदस्य उनके कहे अनुसार चले लेकिन

ऐसा होता नहीं। उनके इस आदेश देने की कोशिशों को घर के दूसरे सदस्य बहुत पसंद नहीं करते बल्कि अपने-अपने ढंग से उसका विरोध भी करते हैं। यही नहीं उनका घर में मौजूद रहना भी शेष सदस्यों को अखरने लगता है। कहानी यह स्पष्ट नहीं करती कि पत्नी और बच्चों का बदला हुआ व्यवहार किस वजह से है। अपने परिवार से दूर रहने के कारण या परिवार के बदलते ढाँचे के कारण।

इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि गजाधर बाबू कठोर प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। वे सहृदय और संवेदनशील व्यक्ति हैं। अपने घर-परिवार के सदस्यों के प्रति ही नहीं उनके संपर्क में आने वाले दूसरों लोगों के प्रति भी वे स्नेह का भाव रखते हैं। गनेशी का उदाहरण हमारे सामने हैं जिसको वे बहुत ही प्रेम से याद करते हैं। अपनी पत्नी के प्रति भी उनके मन में गहरा लगाव है और नौकरी से रिटायर होने के बाद जल्दी से जल्दी घर पहुंचने की इच्छा के पीछे अपनी पत्नी के प्रति उनका यह लगाव भी है। पत्नी को लेकर कई मधुर स्मृत्तियां उनके मन में बसी हुई हैं। अपने बच्चों के प्रति भी स्नेह का भाव उनके मन में है।

उनमें अपने घर-परिवार के प्रति जिम्मेदारी का बोध है। इसी वजह से वे बच्चों को टोकते हैं लेकिन उनकी इस भावना को बच्चे समझ नहीं पाते और उन्हें लगता है कि पिता उन पर शासन चलाने की कोशिश कर रहे हैं। माता-पिता और बच्चों में जिस तरह का संवाद होना चाहिए उसका अभाव भी नज़र आता है। उनकी बेटी बसंती का उदाहरण लिया जा सकता है। अपनी पत्नी के काम के बोझ को हल्का करने के इरादे से जब वे यह फरमान जारी करते हैं कि सुबह का खाना बहू बनाएगी और शाम का खाना बसंती, तो बसंती यह कहते हुए विरोध करती है कि उसे कॉलेज भी जाना होता है। लेकिन पिता बेटी को समझाते हुए तर्क देते हैं, 'तुम सवेरे पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुईं। उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी हैं, दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए।' लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती, माँ की नज़रों में बसंती का काम से जी चुराने के पीछे मुख्य कारण अपनी सहेली शीला के यहाँ जाना है जहाँ उन्हीं के अनुसार 'बड़े-बड़े लड़के हैं'। एक पिता के लिए यह कथन निश्चय ही चिंता का विषय है। एक कुँवारी लड़की ऐसे घर में बार-बार आये-जाये जहाँ जवान लड़के हो तो उसका चिंतित होना स्वाभाविक है और इसी वजह से वह जब एक दिन बसंती को शीला के घर जाते हुए देखते हैं तो उसे जाने से रोक देते हैं। बेटी नाराज हो जाती है और वह खाना-पीना छोड़ देती है। बेटी के इस तरह रूठ जाने से माँ दुखी हो जाती है और वह इसके लिए अपने पति को ही दोषी मानती हैः *'क्या कह दिया बसती से? शाम से मुँह लपेटे पड़ी है। खाना भी नहीं खाया।'*

यह पूरा घटनाक्रम गजाधर बाबू के व्यक्तित्व की दो कमजोरियों को इंगित करता है। गजाधर बाबू का जीवन संबंधी नज़रिया परंपरावादी है। उनका मानना है कि स्त्रियों का कर्त्तव्य घर में रहना और घर के काम में हाथ बँटाना है। पढ़ाई उनके लिए इतनी जरूरी नहीं है। उनको ज्यादा स्वतंत्रता देना भी उचित नहीं है। यही नज़रिया उनकी पत्नी का भी है और इसी कारण वह अपने पति से शिकायत भी करती है लेकिन उसने बदली हुई परिस्थितियों के साथ अपने को 'एडजस्ट' भी कर लिया है। जबकि पिता में वैसा लचीलापन नहीं है जो एक पिता में होना चाहिए। कम-से-कम जवान बच्चों के साथ वह सिर्फ आदेश द्वारा अपनी बातें नहीं मनवा सकता। विडंबना यह है कि गजाधर बाबू अपनी बेटी पर आदेश चलाते हैं, बहू और पत्नी से भी उनकी अपेक्षाएँ हैं लेकिन बेटों को वे कुछ नहीं कहते। बसंती के बनाये खाने पर छोटा बेटा

यह टिप्पणी करते हुए खाना छोड़कर उठ जाता है कि *'मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता'*। लेकिन बेटे के ऐसे व्यवहार पर गजाधर बाबू उसे कुछ नहीं कहते, बेटी की ही शिकायत पत्नी से करते हैं कि *'इतनी बड़ी लड़की हो गई और उसे खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया'*। बेटे और बेटी के बीच फर्क करने का जो रूढ़िवादी नज़रिया है वह गजाधर बाबू के पूरे व्यवहार में झलकता है।

गजाधर बाबू के अलावा जिन पात्रों का उल्लेख कहानी में आता है, वे सभी गजाधर बाबू के माध्यम से ही हमारे सामने प्रकट होते हैं। उनकी पत्नी, उनके बच्चे और उनका नौकर। ये सभी कहानी की परिधि में चक्कर लगाते हैं। कहानी के केंद्र में तो गजाधर बाबू ही बने रहते हैं। गजाधर बाबू की तरह उनकी पत्नी भी परंपरावादी है, लेकिन पति से अलग अपने बच्चों के साथ रहने की उनकी लंबी आदत ने उन्हें अपने पति से कुछ हद तक उदासीन बना दिया है। ऐसा होना बहुत स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। इसी तरह कहानी में बच्चों द्वारा पिता को एक अवांछित मेहमान की तरह देखना भी अतिरंजनापूर्ण लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कहानीकार की सहानुभूति सिर्फ गजाधर बाबू के प्रति है, शेष पात्रों को समझने का प्रयास नहीं दिखाई देता। शेष पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ कहानी में इसी रूप में आती हैं कि स्वयं गजाधर बाबू उन्हें किस रूप में देखते हैं।

बोध प्रश्न

1. इनमें से कौन-सी चारित्रिक विशेषता गजाधर बाबू पर लागू नहीं होती।

   क) परंपरावादी

   ख) संवेदनशील

   ग) गुस्सैल

   घ) सहृदय ( )

2. गजाधर बाबू अपना घर छोड़कर वापस क्यों चले जाते हैं?

   क) घर में उनके लिए जगह नहीं थी।

   ख) अपने परिवार से उपेक्षा महसूस कर रहे थे।

   ग) नई नौकरी मिल गई थी।

   घ) इनमें से कोई नहीं। ( )

10.4 परिवेश

'वापसी' कहानी का परिवेश मध्य वर्ग का है। कहानी के प्रसंग मुख्य रूप से दो स्थानों पर घटित होते हैं। कहानी का आरंभ उस छोटे से रेलवे स्टेशन पर जहाँ गजाधर बाबू नौकरी करते हैं और एक छोटे से सरकारी घर में रहते हैं। कहानी में इस जगह का बहुत ही संक्षिप्त विवरण है : *"रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताये थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी जान-पहचान के लोग ले गये थे, और जगह-जगह मिट्टी बिखरी हुई थी'*। *उस क्वार्टर में बहुत कम सामान था: 'गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नज़र दौड़ाई— दो बक्से, डोलची, बालटी'*। इस विवरण से ही स्पष्ट है कि गजाधर बाबू कोई बड़े पद पर नहीं थे, छोटी-सी जगह पर स्टेशन मास्टर शायद। अकेले रहने के कारण उन्हें ज्यादा सामान की जरूरत भी नहीं थी। इस छोटे

से स्टेशन की छोटी जगह संभवतः कोई छोटा-मोटा कस्बा रहा होगा। लेकिन इस जगह का कोई खास विवरण कहानी में नहीं आता। घर लौटने के बाद जब वे अपने अतीत के दिनों को याद करते हैं, तब इस क्वार्टर और उससे जुड़े परिवेश का कुछ उल्लेख कहानी में किया गया है। जिस क्वार्टर का उल्लेख आरंभ में किया गया था, वह बड़ा सा था और स्टेशन के पास ही सेठ रामजीमल की मिल थी, जिसमें काम करने वाले लोग कभी-कभार उनके पास आकर बैठ जाते थे। लेकिन वह कस्बा कैसा था, कहानी में इसका कोई विवरण नहीं दिया गया है।

सेवानिवृत्त होने के बाद जब गजाधर बाबू अपने घर लौटते हैं जो कि पास के शहर में हैं, तब उस शहर का भी कोई विवरण कहानी में नहीं दिया गया है। वह शहर है, बस इतना ही उल्लेख किया गया है। कहानी का अधिकांश हिस्सा घर की चारदीवारी में ही घटित होता है इसलिए उसका विवरण भी कहानी में नहीं हैं। जिस शीला के घर का उल्लेख आता है, उसका भी कोई वर्णन कहानी में नहीं है। यह जरूर है कि घर का विवरण किंचित् विस्तार से किया गया है। यह प्रसंग गजाधर बाबू के रहने की व्यवस्था के संदर्भ में किया गया हैः

''घर छोटा होने के कारण बैठक में ही अब अपना प्रबंध किया था। उनकी पत्नी के पास अन्दर एक छोटा कमरा अवश्य था, पर वह एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्तर और घी के डिब्बे से घिरा था तो दूसरी ओर पुरानी रज़ाइयाँ, दरियों में लिपटी और रस्सी से बंधी रखी थीं, उसके पास एक बड़े-से टीन के बक्स के कपड़े लापरवाही से पड़े रहते थे। वह भरसक उस कमरे में नहीं जाते थे। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था। तीसरा कमरा, जो सामने की ओर था, बैठक था। गजाधर बाबू के आने से पहले उसमें अमर की ससुराल से आया बेंत की तीन कुर्सियों का सेट पड़ा था। कुर्सियों पर नीली गद्दियाँ और बहू के हाथों के कढ़े कुशन थे''। यही पूरी कहानी में घर का विवरण है और इसे बताने का उद्देश्य यह है कि गजाधर बाबू के लिए घर में कोई समुचित व्यवस्था नहीं है।

कहानी में भौतिक परिवेश के अलावा कई ऐसी बातें आती हैं जो यह बताती है कि गजाधर बाबू और उनका परिवार औसत दर्जे का परंपरागत मध्यवर्गीय परिवार है। अचारों के मर्तबान, चावल के कनस्तर, घी का डिब्बा, टीन के बक्स में रखे गरम कपड़े, बेंत की कुर्सियाँ और इसी तरह का घरेलू सामान का उल्लेख इस तथ्य की ओर ही संकेत करता है। हालाँकि उन्होंने घरेलू कामों के लिए नौकर भी रखा हुआ है। आपसी व्यवहार का रूप भी मध्यवर्गीय भारतीय परिवार के अनुरूप हैं। गजाधर बाबू अपनी पत्नी और युवा बच्चों के व्यवहार से दुखी होकर घर छोड़कर चले जाते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि बच्चे अपने पिता का अपमान करते हैं या उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। पिता के प्रति नाराजगी भी वे सीधे नहीं बल्कि अपनी माँ के माध्यम से व्यक्त करते हैं। इसी तरह एक परंपरागत व्यवहार के अनुरूप औरतें घरेलू काम करती हैं और पुरुष बाहर नौकरी करते हैं। परिवार इतना आधुनिक भी नहीं हुआ है कि बहू अपने ससुर से सीधे बात करे या उसके सामने बैठी रहे। लेकिन परिवार में बदलाव हो रहा है। यह बदलाव बहुत धीमी गति से हो रहा है, फिर भी उसकी चुभन गजाधर बाबू को महसूस होती है। यह चुभन ही कहीं न कहीं गजाधर बाबू को बुरी लगती है और वे घर छोड़ कर चले जाते हैं।

10.5 संरचना शिल्प

उषा प्रियंवदा नयी कहानी दौर की लेखिका हैं और उनकी 'वापसी' कहानी इसी दौर के कथा शिल्प में ही लिखी गई है। नयी कहानी दौर के अधिकतर लेखकों की तरह इस कहानी का संबंध भी मध्यवर्गीय यथार्थ से है। एक मध्यवर्गीय शहरी परिवार में बुजुर्ग लोगों की बदलती स्थिति को इस कहानी का विषय बनाया गया है। कहानी वर्णनात्मक शैली में लिखी गई है। गजाधर बाबू इस कहानी के केंद्रीय चरित्र है और पूरा घटनाक्रम उनके माध्यम से ही हमारे सामने आता है। कहानी में कोई अति नाटकीय प्रसंग नहीं है और न ही पात्रों को सफेद और स्याह के रूप में पेश किया गया है। एक मध्यवर्गीय परिवार के घरेलू और यथार्थ प्रसंग ही एक-एक कर हमारे सामने आते हैं। इस छोटी सी कहानी में कुछ भी गैर जरूरी रूप में चित्रित नहीं हुआ है। सभी प्रसंग कहानी के मुख्य कथ्य को पुष्ट करने के लिए ही रखे गए हैं। लेकिन इस रूप में कि पढ़ने वाले को कुछ भी बनावटी या गैर-जरूरी न लगे।

10.5.1 शैली

कहानी को यथार्थवादी शैली में लिखा गया है। कहानी धीरे-धीरे विकसित होती है। रेलवे के स्टेशन मास्टर गजाधर बाबू सेवानिवृत्त होकर अपने घर जा रहे हैं। उनका छोटा-सा परिवार शहर में रहता है जहाँ उन्होंने एक घर बनवा रखा है। घर जाने की प्रसन्नता और उत्सुकता कहानी के पहले हिस्से में व्यक्त होती है। अपनी पत्नी के साथ गुजारे दिन उन्हें याद आते हैं। लेकिन हल्का सा अवसाद भी है। नौकरी में जो आदर और प्रेम मिला है, उसकी स्मृत्तियाँ उनके साथ है। कहानी का दूसरा और विस्तृत हिस्सा वह है जब वे अपने परिवार के साथ रहने लगते हैं। यही कहानी का मुख्य कलेवर है। उन्हें उम्मीद थी कि जिस तरह अपने परिवार के साथ रहने की सुखद कल्पना उनके मन में है, वह उनके परिवार के सदस्यों को भी होगी। लेकिन ऐसा नहीं होता। इसके विपरीत उन्हें घर में एक अवांछित अतिथि की तरह लिया जाता है। घर में उनके लिए कोई जगह नहीं है जहाँ वे सहज होकर रह सकें। उनका घर में दखल देना या सबसे बड़े होने के कारण बच्चों को आदेश देने को पसंद नहीं किया जाता। यहाँ तक कि पत्नी भी उनको बदली हुई सी लगती है। उन्हें महसूस होता है कि उनकी मौजूदगी घर के सहज माहौल में अवरोध बन गई है और उनके लिए यही उचित है कि वे इस घर को छोड़कर वापस चले जाएँ। छोटे—छोटे प्रसंग कहानी में इसीलिए लाए गए हैं ताकि गजाधर बाबू की बदलती मनःस्थिति को समझा जा सके और उनकी निजी पीड़ा के साथ पाठक तादात्म्य कर सके। ये सभी प्रसंग ऐसे हैं जो मध्यवर्गीय परिवारों में आमतौर पर देखे जा सकते हैं। कहानी का पूरा ताना-बाना सामान्य प्रसंगों से ही बुना गया है, लेकिन पूरी कहानी की परिणति मध्यवर्गीय परिवार में हो रहे बदलाव को बहुत ही तीखे और संवेदनशील ढंग से उभारती हैं। इस कहानी के शिल्प की यही विशेषता है।

10.5.2 भाषा और संवाद

शिल्प की तरह कहानी की भाषा भी यथार्थपरक है। पूरी कहानी बहुत ही सधी हुई भाषा में लिखी गई है। छोटे-छोटे वाक्यों में रचनाकार ने अपनी बात कही है। शब्दों का इस्तेमाल भी उतनी ही सावधानी से किया गया है। प्रत्येक बात को इस तरह कहा गया है कि उसके पीछे की भावना का भी पाठक को बोध हो। कहानी की आरंभिक पंक्तियां ही इन विशेषताओं को प्रकट कर देती हैः

''गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नज़र दौड़ाई– दो बक्से, डोलची, बालटी– 'यह डिब्बा कैसा है गनेशी?' उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ कुछ गर्व, कुछ दुःख, कुछ लज्जा से बोला, 'घरवाली ने साथ को कुछ बेसन के लड़्डू रख दिए हैं। कहा, बाबूजी को पसंद है। अब कहाँ हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पाएँगे।' घर जाने की खुशी में गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया जैसे एक परिचित, स्नेही, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा था।''

कहानी का यह पहला परिच्छेद जो छोटे-छोटे वाक्यों से निर्मित हुआ है, बहुत कुछ कह जाता है। घर जाने के लिए अपना सामान समेटते गजाधर बाबू का यह चित्र है। उनके इस काम में उनका नौकर गनेशी मदद कर रहा हैं। गनेशी और गजाधर बाबू में संक्षिप्त सी बात होती है। एक डिब्बे को देखकर गजाधर बाबू अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं, 'यह डिब्बा कैसा है गनेशी?' गनेशी जो बिस्तर बाँधने में व्यस्त है, सूचित करता है कि उसकी घरवाली ने गजाधर बाबू के लिए बेसन के लड्डू भेजे हैं। इस उत्तर से पहले गनेशी की मानसिक प्रतिक्रिया को लेखिका ने इन शब्दों में व्यक्त किया हैः 'कुछ गर्व, कुछ दुःख, कुछ लज्जा से बोला'। गनेशी में गर्व, दुःख और लज्जा की मिलीजुली भावना को लेखिका ने व्याख्यायित नहीं किया है। लेकिन पाठक अंदाजा लगा सकता है कि गनेशी को इस बात का गर्व है कि उसकी पत्नी ने गजाधर बाबू के लिए बेसन के लड्डू भेजे हैं, क्योंकि वह जानती है कि 'बाबूजी को पसन्द है'। दुःख इस बात का कि बस इतना ही कर पाए हैं। यह बात गनेशी के अगले कथन में व्यक्त भी हुई हैः 'अब कहाँ हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पाएँगे।' लज्जा भी गरीबी के बोध से ही निकली है। गनेशी और उसकी पत्नी का गजाधर बाबू के प्रति स्नेह और आदर की मिलीजुली अभिव्यक्ति उन्हें विषादमय बना देती है, जिसे इस परिच्छेद की अंतिम पंक्तियों में व्यक्त किया गया है।

गजाधर बाबू जल्दी ही इस मनःस्थिति से बाहर निकल आते हैं क्योंकि पैंतीस साल की नौकरी के बाद वे सेवानिवृत्त होकर घर जा रहे हैं। कहानी के अनुसार, *''इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे।''* पूरी कहानी उनकी इस मनोभावना का ही कंट्रास्ट निर्मित करती है। अपने परिवार के साथ रहने की सुखद कल्पना क्या फलीभूत हुई यही वह प्रश्न है जिसका उत्तर यह पूरी कहानी है। लेखिका ने कहानी में ही उस मूल प्रश्न को बहुत ही कुशलतापूर्वक रख दिया है।

कहानी में स्थितियों और भावों को बहुत ही संयमित भाषा में रखा गया है। आरंभिक हिस्से में गनेशी की बेटी के विवाह का प्रसंग इसी तरह का है। लेकिन जब गजाधर बाबू घर पहुँचते हैं और अपनी ही पत्नी और बच्चों से उन्हें अपेक्षित स्नेह और आदर नहीं मिलता, तो भाषा का रूप बदल जाता है। यहाँ स्थितियों के वर्णन में वैसी स्नेहिल तरलता नहीं है जैसी कहानी के आरंभिक हिस्से में नज़र आती है।

''पत्नी आकर चौके में बैठ गईं। उन्होंने नाक-भौं चढ़ाकर चारों और जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा, ''सारे में जूठे बर्तन पड़े हैं। इस घर में धरम-करम कुछ नहीं। पूजा करके सीधे चौके में घुसो।'' फिर उन्होंने नौकर को पुकारा। जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में, फिर पति की ओर देखकर बोलीं, ''बहू ने भेजा होगा बाज़ार।'' और एक लम्बी साँस लेकर चुप हो रहीं।''

यह अंश कहानी के आरंभिक अंश से बिल्कुल भिन्न है। पत्नी का पूरा व्यवहार एक झगड़ालू सास की तरह का है जिसका काम ही बहू की गलतियाँ निकालना हैः 'नाक-

भौं चढ़ाकर चारों ओर झूठे बर्तनों को देखा'। यहाँ नाक-भौं चढाने का प्रयोग गजाधर बाबू की पत्नी के तुनक मिजाज व्यवहार की ओर संकेत करता है। यह उनके बातचीत की भाषा की भी विशेषता है। शिकायत का यह लहजा सिर्फ बहू के लिए ही नहीं है, परिवार के दूसरे सदस्यों के लिए भी है। लेकिन कहानी में पत्नी की इस शिकायत करने की प्रवृत्ति को सहज रूप से लेने की बजाय गजाधर बाबू गंभीरता से ले लेते हैं और इस तरह वे अपने ही घर-परिवार वालों से दूर होते चले जाते हैं।

कहानी में संवादों का जहाँ भी प्रयोग किया है, लेखिका ने पात्र के स्वभाव, मनःस्थिति और पात्रों के पारस्परिक संबंधों का ध्यान रखा है। मसलन, अपनी बेटी बसंती को संबोधित करते हुए कहा गया गजाधर बाबू का यह कथनः *'बसंती आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएँगी।'* यहाँ आदेश का भाव बहुत स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है। इसी तरह छोटे भाई बहन की बातचीत में भाषा का रूप बदला हुआ नज़र आता है। यहाँ आदेश नहीं बल्कि बराबरी का लहजा़ है। संवादों में लेखिका ने लहज़े पर खास जोर दिया है। इससे संवाद बहुत ही यथार्थपरक बन सके हैं।

कुल मिलाकर कहानी अपने कथ्य के अनुरूप शैली और भाषा में रची गई है और इसीलिए वह पाठकों पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है।

10.6 मूल्यांकन

'वापसी' नयी कहानी दौर की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी की रचयिता उषा प्रियंवदा की संभवतः सबसे चर्चित कहानी। कहानी एक सेवानिवृत्त व्यक्ति गजाधर बाबू को केंद्र में रखकर लिखी गई है। अपनी रेलवे की पैंतीस साल की नौकरी से रिटायर्ड होकर वे अपने घर आते हैं। अपनी बीबी और बच्चों के बीच। बच्चे जो अब जवान हो गये हैं। बड़े बेटे और बड़ी बेटी की शादी हो गई है। छोटा बेटा और बेटी कालेज में पढ़ते हैं। उन्हें उम्मीद होती है कि उनका घर लौटना उनके लिए एक सुखद अनुभव होगा। उन्हें हमेशा-हमेशा के लिए अकेलेपन से मुक्ति मिल सकेगी। लेकिन ऐसा नहीं होता। उनकी अनुपस्थिति में उनकी पारिवारिक दुनिया बहुत बदल गई है। रिश्तों की जिस आँच को वे अभी भी अपने अंदर महसूस करते हैं, परिवार के अन्य सदस्य नहीं महसूस करते। यही वजह है कि उनके बीच एक दूरी कायम हो गई है। बच्चे ही नहीं वे अपनी पत्नी के साथ भी अपने को नहीं जोड़ पाते। उन्हें ऐसा महसूस होता है कि उनके लौटने की किसी को खुशी नहीं है बल्कि वे घर में अवांछित मेहमान की तरह है। उनकी मौजूदगी ने उनके सहज जीवन को असहज बना दिया है। यह भावना उनमें इतनी बलवती हो जाती है कि वे उसी जगह लौट जाते हैं जहाँ से वे गए थे। कहानी का शीर्षक 'वापसी' इसीलिए रखा गया है।

अपने ही घर परिवार से इस तरह दूर हो जाने का कारण क्या है, इस बारे में कहानी कुछ नहीं कहती। पाठक को ही कहानी पढ़कर यह समझना होता है कि गजाधर बाबू और उनके परिवार के बीच कायम दूरी का कारण क्या है और इसके लिए कौन दोषी है। क्या दोष उन परिस्थितियों का है जिनके बीच सभी पात्र जीते हैं। या उन नये जीवन मूल्यों का जिसे न समझ पाने के कारण गजाधर बाबू अपने को परिवार के साथ जोड़ नहीं पाते। गजाधर बाबू और उनकी पत्नी में मूल्यगत भेद नहीं हैं। दोनों ही बच्चों के व्यवहार को उचित नहीं मानते। लेकिन पत्नी अपनी असंतुष्टि को अपनी बड़बड़ाहट और पति से शिकायत के पीछे छुपा लेती हैं। बच्चों से टकराने से बचती

है। लेकिन गजाधर बाबू को जो उचित नहीं लगता उसे स्वीकार नहीं कर पाते और बच्चों को टोकते हैं, उनकी आलोचना करते हैं और उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह बताते हैं। इस तरह गजाधर बाबू की मौजूदगी बच्चों के सहज जीवन में अवरोध बन जाती है। इसीलिए वे अपनी माँ से अपने पिता की आलोचना करते हैं। माँ को इस टकराहट में घर की शांति भंग हो जाने का अंदेशा महसूस होता है। यही वजह है कि बच्चों की आलोचना करते हुए भी वह इस बात का समर्थन नहीं करती कि गजाधर बाबू बच्चों के जीवन में दखलंदाजी करे।

घर से दूर रहने के कारण गजाधर बाबू यह नहीं सोच पाते कि दुनिया बहुत बदल गई है। लड़कियों की प्राथमिकता अब चूल्हा चौकी नहीं बल्कि पढ़ना लिखना है। इसी तरह बेटे-बहू भी घर-परिवार में स्वतंत्रता और समानता दोनों चाहते हैं। उन्हें यह पसंद नहीं है कि उनकी निजी दुनिया में कोई दखल दे, भले ही वह पिता ही क्यों न हो। यदि गजाधर बाबू इस बात को समझ पाते, तो उन्हें बच्चों के व्यवहार से न तो आघात लगता और न ही वे अपने को इतना अकेला महसूस करते। कहानी की सीमा यह है कि वह गजाधर बाबू के नज़रिए को तो सहानुभूति के साथ प्रस्तुत करती है लेकिन दूसरे दृष्टिकोणों को समझने का प्रयत्न उसमें नहीं है। दोनों को (गजाधर बाबू और परिवार के शेष सदस्य) अपनी-अपनी आत्मगत दुनिया में बाँध दिया गया है। उनके बीच गजाधर बाबू की पत्नी पुल बन सकती थी, लेकिन गजाधर बाबू अपनी पत्नी से भी संवाद कायम करने में नाकामयाब रहते हैं।

फिर भी, कहानी एक वृद्ध व्यक्ति के अकेलेपन, अपने ही घर-परिवार से अलगाव और उसकी आंतरिक पीड़ा को व्यक्त करने में कामयाब है। पाठक गजाधर बाबू के साथ तादात्म्य स्थापित कर पाते हैं। कहानी पाठकों पर गहरा प्रभाव छोड़ती है।

बोध प्रश्न

3. गजाधर बाबू का परिवार किस तरह का था?

   क) साधन संपन्न उच्चवर्गीय

   ख) गरीब और निम्नवर्गीय

   ग) शिक्षित, शहरी और मध्यवर्गीय

   घ) ग्रामीण और मध्यवर्गीय ( )

4. कहानी में किस समस्या को उठाया गया है?

   ....

   ....

5. गजाधर बाबू की वापसी के लिए आप किसे दोषी मानते हैं?

   ....

   ....

   ....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

अभ्यास

1 'वापसी' कहानी का सार संक्षेप में लिखिए।

....

....

....

....

....

2 गजाधर बाबू का चरित्र-चित्रण कीजिए।

....

....

....

....

....

3 'वापसी' कहानी के कथ्य को ध्यान में रखकर उसका मूल्यांकन कीजिए।

....

....

....

....

....

4 कहानी के संरचना शिल्प पर सोदाहरण प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

10.7 सारांश

आपने इस इकाई में उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' का अध्ययन किया है। इस इकाई में आपने कहानी के साथ-साथ उसकी कथावस्तु, पात्रों के चरित्र-चित्रण, परिवेश, भाषा और शैली, कहानी का उद्देश्य और उसके मूल्यांकन का भी अध्ययन किया है। आप इस इकाई को पढ़कर यह बता सकते हैं कि कहानी की कथावस्तु क्या है, उसकी क्या विशेषताएँ हैं। कहानी के केंद्रीय चरित्र गजाधर बाबू की चारित्रिक विशेषताओं का भी उल्लेख कर सकते हैं। कहानी के भौतिक और भावनात्मक परिवेश

का भी चित्रण कर सकते हैं। कहानी की भाषा और शैलीगत विशेषताएँ बता सकते हैं और कहानी के उद्देश्य पर भी प्रकाश डाल सकते हैं।

'वापसी' कहानी आधुनिक परिवारों में वृद्ध माता-पिता के प्रति बच्चों के बदलते रवैये का अत्यंत मार्मिक चित्रण करती है। कहानी बताती है कि माता-पिता के लिए अपने ही बच्चों के साथ घुलमिलकर रहना मुश्किल हो सकता है यदि वे बच्चों की भावनाओं और इच्छाओं को न समझे। कहानी के मुख्य पात्र गजाधर बाबू का चित्रण इस दृष्टि से प्रभावशाली है। पूरी कहानी उन्हीं के इर्दगिर्द घूमती है। अन्य पात्रों का चित्रण भी यथार्थपरक ढंग से किया गया है। कहानी में मध्यवर्ग के परिवार का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। भाषा कहानी के अनुरूप संवेदनात्मक और सहज है। कहानीकार की सहानुभूति यद्यपि गजाधर बाबू के साथ है लेकिन अन्य पात्रों को खलनायक की तरह पेश नहीं किया गया है।

10.8 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) ग 2) ख 3) ग

4 कहानी में एक सेवानिवृत्त वृद्ध व्यक्ति के अपने परिवार से अलगाव और अकेलेपन की समस्या को उठाया गया है।

5. गजाधर बाबू की पत्नी और बच्चों का यह दोष है कि वे उन्हें वह आदर, सम्मान और स्नेह नहीं देते जिसके वे हकदार हैं और स्वयं उनका कसूर यह है कि बच्चों के अनुरूप वे अपने परिवार के साथ तालमेल बैठाने का प्रयत्न नहीं करते।

अभ्यास

1 इसके लिए ध्यानपूर्वक कहानी का अध्ययन कीजिए।

2 गजाधर बाबू के चरित्र-चित्रण के लिए इकाई के भाग 10.4 का अध्ययन कीजिए।

3 एवं 4 इकाई के भाग 10.5 और 10.6 का साथ-साथ अध्ययन कीजिए और उसके बाद प्रश्नों के उत्तर लिखिए।